कृष्णाकान्त का विल

उपन्यास-सम्राट्

वङ्किमचन्द्र चट्टोपाध्याय

श्री सूर्य्यकान्त त्रिपाठी, निराला

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, इलाहाबाद

१९४०

मूल्य ।॥) आने

कृष्णकान्त का विल

पहला खण्ड

पहला परिच्छेद

हरिद्रा ग्राम मे बडे जमींदार का एक घर था। जमीदार बाबू कृष्णकान्त राय थे। कृष्णकान्त राय बडे धनिक थे। उनकी जमीदारी का मुनाफा लगभग दो लाख रुपये था। यह सम्पत्ति उनकी और उनके भाई रामकान्त राय की उपार्जित थी। दोनो भाइयों ने एक साथ मिलकर धनोपार्जन किया था। दोनो भाइयों मे बड़ी प्रीति थी। किसी के मन मे किसी वक्त भी सन्देह नहीं पैदा हुआ कि एक दूसरे से ठगा जायगा। जमींदारी केवल बडे भाई कृष्णकान्त के नाम खरीदी गई थी। दोनो का सम्मिलित कुटुम्ब था। रामकान्त राय के एक लडका पैदा हुआ था, उसका नाम था गोविन्दलाल। लड़का पैदा होने के वक्त रामकान्त राय के मन मे यह सङ्कल्प हुआ कि दोनो की पैदा की हुई सम्पत्ति एक के नाम से है, इसलिए पुत्र के कल्याण के अर्थ उसकी समुचित लिखा-पढ़ी कर लेना कर्तव्य है। क्योंकि, जब भी उनके मन मे यह निश्चय था कि कृष्णकान्त कभी उन्हे धोखा नहीं देंगे या कोई अन्यायाचरण नहीं करेंगे, फिर भी कृष्णकान्त का परलोकवास हो जाने पर उनके लड़के क्या करेंगे, इसका निश्चय नहीं। परन्तु वे लिखा-पढ़ी की बात एकाएक नहीं कह सके—आज कहेंगे, कल कहेंगे, करने लगे।

एक बार काम से जमींदारी गये तो वहीं अकस्मात उनकी मृत्यु हो गई।

अगर कृष्णकान्त ऐसा सोचते कि भतीजे को धोखा देकर कुल सम्पत्ति अकेले दखल करेंगे तो इसके लिए अब कोई दूसरा विघ्न नहीं रह गया था। परन्तु कृष्णकान्त का ऐसा असद् अभिप्राय नहीं था, वे गोविन्दलाल को अपने परिवार मे अपने पुत्रों के साथ समानभाव से पालने लगे और विल करके अपनी उस उपार्जित सम्पत्ति का न्यायानुसार आधा हिस्सा जो रामकान्त राय का प्राप्य था, गोविन्दलाल को दे जाने की इच्छा की।

कृष्णकान्त राय के दो लड़के थे और एक लड़की। बड़े लड़के का नाम हरलाल था, छोटे का विनोदलाल और लड़की का नाम शैलवती। कृष्णकान्त ने ऐसा विल (वसीयतनामा) किया कि उनके परलोकवास पर आठ आने गोविन्दलाल के, हरलाल और विनोदलाल के तीन-तीन आने, गृहिणी का एक आना और शैलवती का एक आना सम्पत्ति पर अधिकार होगा।

हरलाल बड़ा शरारती था, पिता की बात नहीं मानता था और मुँहफट था। बङ्गाल का विल अक्सर छिपा नहीं रहता। विल की बात हरलाल को मालूम हो गई। हरलाल ने कुल संवाद प्राप्त कर क्रोध मे आँखे लाल करके पिता से कहा, "यह क्या हुआ? गोविन्द-लाल को आधा हिस्सा मिला और मुझे सिर्फ तीन आने?"

कृष्णकान्त ने कहा, "यही न्याय है। गोविन्दलाल के पिता का हक आधा हिस्सा उसे दिया गया है।"

हरलाल ने कहा, "आपकी अक्ल मारी गई है,—आपको हम आपके इच्छानुसार काम करने नहीं देंगे।"

कृष्णकान्त ने क्रोध मे आँखे लाल करके कहा, "हरलाल अगर तुम लड़के होते तो आज पंडित जी को बुला कर हम इसकी पंचायत लगवाते।"

हरलाल बोला "बचपन मे मैने पंडित जी की चुटिया जला दी थीं इस वक्त यह विल भी उसी तरह जला दूँगा।"

कृष्णकान्त ने दूसरी बात नही कही। अपने हाथ से विल फाड़ डाला। उसके बदले एक नया विल लिखवाया जिसमे गोविन्दलाल के आठ आने रहे, विनोदलाल के पाँच आने, मालकिन का एक आना, शैलवती का एक आना और हरलाल का सिर्फ एक आना।

गुस्से मे आकर हरलाल पिता का घर छोड़ कर कलकत्ता गया, वहाँ से पिता के पास एक पत्र लिखा। उसका मर्म यह है,—

"कलकत्ता के पडितो का मत है कि विधवा-विवाह शास्त्र-सम्मत है। मैने सोचा है कि एक विधवा-विवाह करूँगा। आप अगर विल बदल कर आठ आने लिख दे और वह विल जल्द रजिस्ट्री कर दे तो इससे बाज आऊँगा, नही तो जल्द एक विधवा-विवाह करूँगा।"

हरलाल ने सोचा था कि कृष्णकान्त डर कर विल बदल देंगे और हरलाल को अधिक सम्पत्ति लिख देंगे। परन्तु कृष्णकान्त का जो उत्तर मिला उससे उन्हे आशा नही रही। कृष्णकान्त ने लिखा,—

"तुम मेरे त्याज्य पुत्र हो। तुम्हारी जिस तरह इच्छा हो उस तरह विवाह कर सकते हो। मेरी जिसे इच्छा होगी उसे सम्पत्ति दूँगा। तुम यदि यह विवाह करोगे तो मै विल बदलूँगा सही, परन्तु उससे तुम्हारा अनिष्ट के सिवा इष्ट न होगा।"

इसके कुछ ही दिन बाद हरलाल ने संवाद भेजा कि उन्होने विधवा-विवाह किया है।

कृष्णकान्त राय ने फिर विल फाड़ डाला। नया विल करेंगे।

टोले मे ब्रह्मानन्द नाम के एक सीधे स्वभाव के भले मानुस रहते थे, कृष्णकान्त को ताऊ जी कहते थे और उनकी कृपा से चार पैसे पा भी जाते थे।

"ब्रह्मानन्द के हस्ताक्षर अच्छे थे। यह सब लिखा-पढ़ी उन्हीं के हाथ हुई थी। कृष्णकान्त ने उस रोज़ ब्रह्मानन्द को बुला कर कहा, "भोजन के वाद यहीं आना, नया विल लिख देना होगा।"

विनोदलाल वहीं उपस्थित था। उसने पूछा, "किस मतलब से फिर विल बदलिएगा ?"

कृष्णकान्त ने कहा, "अब की तुम्हारे बड़े भाई के हिस्से मे सिफर आयेगा।

विनोदलाल—यह अच्छा नहीं मालूम देता। माना कि वे अपराधी है, मगर उनके एक लड़का है—वह मासूम बच्चा है, उसने कोई कसूर नहीं किया। उसका क्या होगा ?

कृष्णकान्त—उसे एक पाई लिख देंगे।

विनोद—एक पाई हिस्से से क्या होगा ?

कृष्णकान्त—मेरी आमदनी दो लाख रुपये की है। उसकी एक पाई तीन हज़ार रुपये से ज्यादा होती है। इससे एक गृहस्थ का भोजन-वस्त्र अनायास चल सकता है। इससे ज्यादा नहीं दूँगा।

विनोदलाल ने बहुत समझाया परन्तु मालिक का मत किसी तरह भी नहीं बदला।

दूसरा परिच्छेद

ब्रह्मानन्द स्नान और भोजन करके सोने का उद्योग कर रहे थे ऐसे वक्त ताज्जुब मे आकर देखा कि हरलाल है। हरलाल आकर सिरहाने बैठा।

ब्रह्मानन्द—यह क्या ? बड़े बाबू है, कब मकान आये ?

हरलाल—मकान अभी भी नहीं गये।

ब्र०—सीधे यहाँ? कलकत्ते से कब आये?

हर०—कलकत्ते से दो रोज हुए, आया हूँ। बस दो दिन किसी जगह छिपा था। सुना है, फिर नया विल तैयार होगा।

ब्र०—ऐसा ही सुन रहा हूँ।

हर०—मेरे हिस्से में अब की फिकर आयेगा, सुना।

ब्र०—मालिक अभी गुस्से में कर रहे हैं सही, लेकिन ऐसा रहेगा नहीं।

हर०—आज दिन ढलते लिखा-पढ़ी होगी? तुम लिखोगे?

ब्र०—तो फिर और क्या करें भाई! मालिक के कहने पर "नहीं" तो कह सकता नहीं?"

हर०—अच्छा है, इसमें तुम्हारा क्या कसूर? इस वक्त कोई रोज़गार करोगे?

ब्र०—घूँसा और झापड़? अच्छा भाई, मार लो।

हर०—यह नहीं, एक हज़ार रुपया।

ब्र०—क्या विधवा से शादी करें?

हर०—यही।

ब्र०—उम्र हो गई है।

हर०—तो एक दूसरा काम बतलाता हूँ, अभी शुरू कर दो, पेशगी कुछ ले लो। यह कह कर हरलाल ने ब्रह्मानन्द के हाथ में ५०० रुपये का नोट दिया।

ब्रह्मानन्द ने नोट पाकर उलट-पलट कर देखा और कहा, "इसे लेकर मैं क्या करूँगा?"

हर०—जमा कर रक्खो। १० रुपया मोती ग्वालिन को देना।

ब्र०—ग्वालिन-वालिन से मेरा कोई ताल्लुक नहीं। लेकिन मुझे क्या करना होगा?

हर०—दो कलम तैयार करो, दोनों जैसी बिलकुल एक-सी हों?

ब्र०—अच्छा भाई जैसा कहते हो, करता हूँ। यह कह कर घोष महाशय ने दो नई कलमे लेकर एक-सी काट कर तैयार कीं और लिखकर देखा कि दोनो का लिखना देखने मे एक-सा होता है। तब हरलाल ने कहा, "इनमे से एक कलम बक्स के अन्दर रक्खो। जब विल लिखने जाना, यह कलम लेकर इसी से विल लिखना। दूसरी कलम लेकर इस वक्त एक लिखा-पढ़ी करनी होगी।

"तुम्हारे पास अच्छी स्याही है?"

ब्रह्मानन्द ने दावात निकाल कर, लेकर दिखलाया, हरलाल कहने लगा, "ठीक है, यही स्याही विल लिखने के लिए ले जाना।"

ब्र०—"तुम्हारे घर मे क्या दावात-कलम नहीं कि मै ढोकर ले जाऊँ?"

हर०—"मेरा कोई उद्देश्य है—नहीं तो तुम्हे इतना रुपया क्यो देता?"

ब्र०—मै भी यही सोच रहा हूँ, ठीक कहा है, मेरे भाई।

हर०—तुम दावात-कलम ले जाओगे तो कोई सोचे तो सोच सकता है कि आज यह सब क्यो ले आये? तुम सरकारी स्याही और कलम को भला-बुरा कहना, तो सब सुधर जायगा।

ब्र०—सिर्फ सरकारी स्याही और कलम को क्यो? सरकार को भी भला-बुरा कह सकता हूँ।

हर०—इतनी दूर तक ज़रूरत नहीं। इस वक्त असली काम शुरू करो।

हरलाल ने दो जनरल लेटर कागज़ ब्रह्मानन्द के हाथ मे दिया, ब्रह्मानन्द ने कहा, "यह तो सरकारी कागज है, देख रहा हूँ।"

"सरकारी नहीं—लेकिन वकील के मकान में लिखापढ़ी इसी कागज़ मे हुआ करती है। मालिक भी इसी कागज़ से विल लिखाया

करते है, जानता हूँ। इसी लिए यह कागज़ मैं ले आया हूँ। जो कुछ कहता हूँ वह इसी स्याही और कलम से लिखो।"

ब्रह्मानन्द ने लिखना शुरू किया। हरलाल ने एक विल लिख दिया। उसका मर्म यह है,—कृष्णकान्त राय विल कर रहे है। उनके नाम से जितनी सम्पत्ति है, उसका बँटवारा कृष्णकान्त के परलोक-वास पर ऐसा होगा। जैसे—विनोदलाल तीन आने, गोविन्दलाल एक पैसा, गृहिणी एक पैसा, शैलवती एक पैसा, हरलाल का पुत्र एक पैसा, हरलाल ज्येष्ठ पुत्र है इसलिए बाकी बारह आने।

लिखना समाप्त हो जाने पर ब्रह्मानन्द ने कहा, "अब तो विल लिख गया, दस्तखत कौन करेगा ?" "मै" कह कर, हरलाल ने उस विल मे कृष्णकान्त राय और चार गवाहो के दस्तखत कर दिये, ब्रह्मानन्द ने कहा अच्छा, यह तो जाली विल हुआ।"

हर०—यही सच्चा विल हुआ, दोपहर ढले जो विल लिखोगे, वही जाली होगा।

ब्र०—किस तरह ?

हर०—तुम जब विल लिखने जाओगे, तब यह विल अपने कुर्ते की जेब मे छिपा ले जाना। वहाँ जाकर इसी स्याही और कलम से उनकी इच्छा के अनुसार विल लिखना। कागज़, कलम, स्याही और लिखनेवाला एक ही है, अतएव दोनो विले देखने मे एक-सी होगी। बाद को विल पढ़ कर सुनाना और दस्तखत हो जाने पर तुम अपना दस्तखत करने के लिए लोगे। सबकी तरफ पीठ कर दस्तखत करना। इसी अवकाश मे विल बदल लेना। यह विल मालिक को देकर मालिकवाली मुझे ला देना।

ब्रह्मानन्द घोष सोचने लगे। कहा "कहने से क्या है—बुद्धि का खेल तुम अच्छा खेले।"

हर०—सोचते क्या हो ?

ब्र०—इच्छा तो होती है, लेकिन डरता हूँ, अपना रुपया लौटा लो। मै इस जाल मे नहीं रहूँगा।

"रुपया दो" यह कहकर हरलाल ने हाथ फैलाया। ब्रह्मानन्द घोष ने नोट लौटाल दिये। नोट लेकर हरलाल चला जा रहा था। ब्रह्मानन्द ने तब उसे बुलाकर कहा, "क्या भैया साहब चले गये ?"

नहीं, कह कर हरलाल लौटे।

ब्र०—तुमने इस वक्त पॉच सौ रुपया दिया। और क्या दोगे ?

हर०—तुम वह विल लिख कर दोगे तो और पॉच सौ दूँगा।

ब्र०—बहुत रुपये है—लोभ छोड़ा नहीं जाता।

हर०—तो तुम राज़ी हुए ?

ब्र०—राजी नहीं हूँगा तो क्या करूँगा ? लेकिन बदलूँगा किस तरह ? देख जो लेगे ?

हर०—क्यों देख लेगे ? मै तुम्हारे सामने विल बदले लेता हूँ, तुम देखो कुछ पता चलता है ?

हरलाल के दूसरी विद्या रही हो या न रही हो, हस्त-कौशल-विद्या मे कुछ शिक्षा उसने प्राप्त की थी। उसने विल जेब मे रक्खा और एक कागज़ हाथ मे लेकर, उसमे लिखने का उपक्रम किया। इस वक्त हाथ का कागज़ जेब मे और जेब का हाथ मे किस तरह आया, ब्रह्मानन्द किसी तरह मालूम नहीं कर सके। ब्रह्मानन्द हरलाल के हस्त-कौशल की प्रशंसा करने लगे। हरलाल ने कहा, "यह कौशल तुम्हे सिखा दूँगा।"

यह कह कर हरलाल, वह अभ्यस्त कौशल ब्रह्मानन्द को अभ्यास कराने लगे।

दो-तीन दंड मे वह कौशल ब्रह्मानन्द को भी अभ्यस्त हो गया, तब हरलाल ने कहा, "मै अब चला। शाम को बाकी रुपये लेकर आऊँगा।"

यह कह कर वह विदा हुआ ।

हरलाल के चले जाने पर ब्रह्मानन्द को बड़ा डर मालूम दिया। उन्होंने देखा कि जिस काम के लिए वे स्वीकृत हुए हैं, अदालत मे उस अपराध का बहुत बड़ा दंड है—कौन कहे, भविष्य मे उन्हे जिन्दगी भर के लिए सज़ा काटनी पडे। विल बदलते समय अगर किसी ने उन्हे देख लिया ! वे ऐसा काम क्यो कर रहे है ? लेकिन बिना किये हाथ आया हज़ार रुपया छोड़ना पड़ता है। ऐसा भी नहीं किया जाता। प्राण रहते, नही।

हाय फलाहार ! कितने दरिद्र ब्राह्मणो को तुमने मर्मान्तक पीड़ा दी है। इधर संक्रामक ज्वर और प्लीहा से पेट भर गया है, इस पर फलाहार सामने है ! तब कॉसे के पात्र मे या केले के पत्र मे सुशोभित पूड़ियाँ, सदेश, बिहीदाना, सीताभोग आदि की अमल-धवल शोभा देखकर दरिद्र ब्राह्मण क्या करेगा ? छोड़ेगा या भोजन करेगा ? मै शपथ करके कह सकता हूँ कि ब्राह्मण देवता यदि सहस्रो वर्षों तक उस सज्जित पात्र के पास बैठे हुए तर्क-वितर्क करे, तो भी वे इस कूट प्रश्न की मीमांसा नहीं कर सकते—और मीमांसा न कर सकने के कारण अनमने होकर दूसरे का द्रव्य अपने पेट मे डालेगे।

ब्रह्मानन्द घोष महाशय ने ऐसा ही किया। हरलाल का यह रुपया हज़्म करना कठिन है,—जेल का भय है, लेकिन छोडा भी तो नहीं जाता। बड़ा लाभ है, किन्तु बदहजमी का डर भी बहुत ज्यादा है ! ब्रह्मानन्द कोई सिद्धान्त नहीं कर सके। सिद्धान्त न कर सकने के कारण, दरिद्र ब्राह्मण की तरह उन्होने पेट मे डालने की तरफ़ ही मन रक्खा।

तीसरा परिच्छेद

शाम के बाद ब्रह्मानन्द विल लेकर लौट आये। देखा कि हरलाल घर में बैठा है। हरलाल ने पूछा, "क्या हुआ !"

ब्रह्मानन्द कविताप्रिय हैं। उन्होने मुश्किल से हँसी रोक कर कहा,—

दिल में आता है बढ़ा कर हाथ पकड़ूँ चन्द्रमा,
"किन्तु कॉटों में बबूलो के अँगुलियॉ छिद गई ।"

हरलाल—क्या काम नहीं कर सके ?

ब्रह्मानन्द—भाई, दिल मे बड़ी रुकावट आ रही थी।

हर०—तो नहीं कर सके ?

ब्र०—नहीं भाई—यह लो अपना जाली विल। यह लो अपना रुपया।

यह कह कर ब्रह्मानन्द ने कृत्रिम विल और संदूक से पॉच सौ रुपये का नोट निकाल कर दिया। क्रोध और विरक्ति से हरलाल की ऑखें लाल हो गई और होठ कॉपने लगे। कहा, "मूर्ख, नालायक, एक औरत का काम भी तुमसे नहीं हो सका ? मै जाता हूॅ। लेकिन देखना अगर तुमसे इस बात की भाप भी बाहर निकली तो तुम्हारी जान ख़तरे मे है।"

ब्रह्मानन्द ने कहा, "यह चिन्ता न करना। बात मुझसे नहीं खुलेगी।"

वहॉ से उठ कर हरलाल ब्रह्मानन्द की रसोई मे गया, हरलाल घर का लड़का है, सब जगह आ-जा सकता है। रसोई में ब्रह्मानन्द की भतीजी रोहिणी भोजन पका रही थी। इस रोहिणी से हमारा विशेष प्रयोजन है, इसलिए उसके रूप और गुण की कुछ बातें कहनी पड़ेगी, लेकिन आजकल रूप की वर्णना का बाज़ार गिरा हुआ है और गुण की वर्णना हाल के कानून से अपने सिवा

दूसरे की करना नही चाहता । लेकिन इतना कहना पड़ेगा कि रोहिणी की भरी जवानी थी, रूप छलक रहा था, शरद का चाँद सोलहो कलाओ से पूर्ण था। वह थोड़ी उम्र मे विधवा हो गई थी। वैधव्य मे न चलनेवाले कुछ दोष उसके थे। वह काली किनारे की साड़ी पहनती थी। हाथ मे चूड़ियाँ पहनती थी और शायद पान भी खाती थी। इधर भोजन पकाने मे वह दूसरी द्रौपदी थी, कह सकता हूँ। रसेदार, झोर, खटाई, सूखा, दाल, भुर्ता आदि आदि पकाने मे सिद्धहस्त थी, साथ ही चित्रकारी, कत्थे के गहने, फूल के खिलौने और सुई के काम मे बेजोड़ थी। बाल बाँधने और लड़कियो को पहनाने-ओढ़ाने मे टोले का एक मात्र सहारा थी। उसका कोई दूसरा सहायक नहीं था इसलिए वह ब्रह्मानन्द के घर रहती थी।

रूपवती रोहिणी दालवाली बटलोई मे चम्मच ठनका रही थी, दूर एक बिल्ली अगला पजा बढाये हुए बैठी थी, पशु रमणियो के विद्युद्दाम कटाक्ष से सिहर उठते है या नही, यह देखने के लिए रोहिणी उस पर रह रह कर विषपूर्ण मधुर कटाक्ष कर रही थी, बिल्ली उस मधुर कटाक्ष से भुनी हुई मछली का टुकड़ा पाने का नेवता समझ कर थोड़ा थोड़ा करके आगे बढ़ रही थी, ऐसे वक्त हरलाल बाबू जूता मचमचाते हुए घर के भीतर गये, बिल्ली डर कर भुनी मछली के टुकडे का लोभ छोड़ कर भागने को हुई; रोहिणी दालवाला चम्मच डाल कर हाथ धोकर, सर का कपड़ा सम्हाल कर खड़ी हो गई। नाखून से नाखून खोट कर पूछा, "बडे काका, कब आये ?"

हरलाल ने कहा, "कल आया हूँ। तुम्हारे साथ एक बात है।"

रोहिणी काँपी, पूछा, "क्या आज यहीं भोजन कीजिएगा ? बारीक चावल चढ़ा दूँ ?"

हर०—चढ़ाना हो, चढ़ाओ; लेकिन बात यह नही। तुम्हे एक रोज की बात याद आती है ?

रोहिणी चुपचाप पृथ्वी की तरफ़ देखती रही। हरलाल ने कहा, "उसी दिन, जिस दिन तुम गंगा नहाकर आते हुए यात्रियो के साथ से पीछे पड़ रही थीं, याद है ?

रो०—(वाये हाथ की चार अँगुलियाँ दाये हाथ से पकड़ कर सर झुकाये हुए) याद है।

हर०—जिस रोज तुम रास्ता भूल कर बीच मैदान मे पड़ी थीं, याद है ?

रो०—है।

हर०—जिस दिन मैदान मे तुम्हे रात हो गई थी, तुम अकेली थीं—कुछ वदमाशो ने तुम्हारा पीछा पकड़ा था—याद है ?

रो०—है

हर०—उस दिन किसने तुम्हे बचाया था ?

रो०—तुमने। घोड़े पर चढ़ कर उस मैदान से तुम कहीं जा रहे थे—

हर०—साली के यहाँ।

रो०—तुमने देखकर मुझे बचाया था—मुझे पालकी से घर भेज दिया था। याद क्यो नहीं है। वह ऋण मै कभी चुका नहीं पाऊँगी।

हर०—आज वह ऋण चुका सकती हो, इसके साथ ही मुझे जन्म भर के लिए खरीद सकती हो, खरीदोगी ?

रो०—क्या कहते हो, मै जान देकर भी तुम्हारा उपकार करूँगी।

हर०—करो या न करो, यह सब किसी से कहना नहीं।

रो०—जान रहते नहीं कह सकती।

हर०—कसम खाओ।

रोहिणी ने कसम खाई। तव हरलाल ने कृष्णकान्त के असली विल और जाली विल की बात समझा कर कही। अंत मे

कहा, "वह असली विल चुरा कर जाली विल उसकी जगह रख आना होगा। हमारे मकान मे तुम आती-जाती हो, तुम बुद्धिमती हो, तुम अनायास कर सकती हो। मेरे लिए यह करोगी ?"

रोहिणी कॉपी। कहा, "चोरी ? मुझे काट डालने पर भी नहीं कर सकूँगी।"

हर०—स्त्री ऐसी ही असार है, सिर्फ बातो की राशि है। क्या यही इस जन्म के लिए तुम मेरा ऋण चुका नही सकतीं ?

रो०—और जो कुछ कहे, सब कुछ कर सकती हूँ। मरने को कहे मर सकती हूँ, किन्तु यह विश्वासघात का काम नही कर सकती।

हरलाल किसी तरह रोहिणी को सहमत न कर सकने पर हजार रुपये के नोट रोहिणी के हाथ मे देने को चले। कहा, यह हजार रुपया पेशगी इनाम लो। यह काम तुम्हे करना होगा।"

रोहिणी ने नोट न लिया। कहा, "रुपया की आशा नहीं करती। मालिक की कुल जायदाद देने पर भी नहीं कर सकती। करने को होता तो आपकी बात से ही करती।"

हरलाल ने लम्बी सॉस छोड़ी, कहा, "मैंने सोचा था, रोहिणी तुम मेरा भला चाहती हो। लेकिन दूसरे अपने नहीं होते। देखो, अगर आज मेरी स्त्री रहती तो मै तुम्हारी ख़ुशामद न करता। वही मेरा यह काम कर देती।"

अब की रोहिणी मुसकराई। हरलाल ने पूछा, "मुसकराई क्यो ?"

रो०—आपकी स्त्री के नाम से वह विधवा-विवाहवाली बात याद आई। सुना, आपने विधवा-विवाह किया है ?

हर०—इच्छा तो है—लेकिन मन जैसा चाहता है वैसी विधवा मिलती कहॉ है ?

रो०—खैर विधवा ही हो और सोहागिन ही हो—कहती हूँ, विधवा-विवाह ही हो, कुमारी ही हो,—एक विवाह कर संसारी होना अच्छा

है। हम लोग आत्मीय स्वजन हैं, सभी को इससे आनन्द होगा; होता है।

हर०—देखो रोहिणी, विधवा विवाह शास्त्र-सम्मत है।

रो०—हाँ, इस वक्त लोग ऐसा कहते तो हैं।

हर०—देखो, तुम भी एक विवाह कर सकती हो, क्यों नहीं कर सकतीं ?

रोहिणी ने सर का कपड़ा कुछ खींच कर मुँह फेर लिया। हरलाल कहने लगे, "देखो तुम्हारा हमारा सिर्फ गाँव का रिश्ता है, सच्ची सगाई में रुकावट नहीं।"

इस दफा रोहिणी ने और लम्बा घूँघट काढ़ा और चूल्हे के करीब बैठकर दाल में चम्मच डालने लगी।

देखकर हताश होकर हरलाल लौट गया। हरलाल दरवाज़े तक गया तो रोहिणी ने कहा, "न हो, कागज़ रख जाइए; देखूँ क्या कर सकती हूँ।"

हरलाल प्रसन्न हुआ, जाली विल और नोट रोहिणी के पास रख दिया। देखकर रोहिणी ने कहा, "नोट नहीं, सिर्फ विल रख जाइए।"

हरलाल तब जाली विल रख कर नोट ले गया।

चौथा परिच्छेद

उस दिन रात आठ बजे कृष्णकान्त राय अपने सोनेवाले कमरे में पलँग पर बैठे हुए, तकिया से पीठ लगाकर सटक से तम्बाकू पी रहे थे और संसार की एकमात्र दवा—मादक द्रव्यों में श्रेष्ठ

अहिफेन उर्फ अफ़ीम के नशे मे मधुर मधुर पीनक ले रहे थे। पीनक के खयाल मे देख रहे थे, जैसे विल एकाएक विक्री—कवाला हो गई है। जैसे हरलाल ने तीन रुपये तेरह आने दो कौड़ी कीमत मे उनकी कुल सम्पत्ति खरीद ली है। फिर जैसे किसी ने कह दिया, "नही यह दान-पत्र नही, तमस्सुक है।"

उसी वक्त जैसे देखा कि ब्रह्मा के बेटा विष्णु आये और बोले कि सवेरे महादेव से डिबिया भर अफ़ीम कर्ज़ लेकर यह तमस्सुक लिखाकर विश्वब्रह्मांड रेहन रख दिया—महादेव गाँजे के नशे मे फोरक्लोज़ करना भूल गये। ऐसे समय रोहिणी धीरे-धीरे उस कमरे मे जाकर बोली, "दादा, क्या सो गये?"

कृष्णकान्त पीनक लेते लेते बोले, "कौन है नन्दी? महादेव बाबा को इस वक्त फोरक्लोज करने के लिए कहो।"

रोहिणी समझी कि कृष्णकान्त पर अफ़ीम सवार है। हँस कर पूछा, "दादा, नन्दी कौन है?"

कृष्णकान्त ने बिना गरदन उठाये कहा, "हूँ, ठीक कहा। वृन्दावन के ग्वालो के यहाँ मक्खन खाया है—आज तक उसकी एक कौड़ी नहीं दी।"

रोहिणी खिलखिलाकर हँस पड़ी। तब कृष्णकान्त जगे, सर उठा कर देखा, पूछा, "कौन है, अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी?"

रोहिणी ने जवाब दिया, "मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य।"

कृष्ण०—अश्लेषा, मघा, पूर्वा फाल्गुनी।

रो०—दादा! मै क्या तुम्हारे पास ज्योतिष सीखने आई हूँ?

कृष्ण०—ठीक तो! तो क्या सोच कर? अफीम तो नहीं चाहिए?

रो०—जो जान रहते नहीं दे सकेंगे, उसके लिए मै आई हूँ? मुझे काका साहब ने भेजा है, इसलिए आई हूँ।

कृष्ण०—यह—यह! तो अफीम के लिए ही।

रो०—नहीं दादा, नहीं। तुम्हारी कसम, अफीम नहीं चाहिए। काका साहब ने कहा है कि जिस विल की आज लिखा-पढ़ी हुई है, उसमे तुम्हारे दस्तखत नहीं हुए।

कृष्ण०—वह क्या? मुझे खूब याद है कि मैने दस्तखत किये है।

रो०—नहीं, काका ने कहा है कि उन्हे जैसा याद है कि उसमे आपके दस्तखत नहीं हुए, लेकिन संदेह रखने की जरूरत क्या है? पहले क्यो उसे निकाल कर एक दफा देख नहीं लेते?

कृष्ण०—ठीक तो है—ज़रा दिया दिखाओ तो सही।

यह कह कर कृष्णकान्त ने उठ कर तकिये के नीचे से एक कुंजी ली। रोहिणी ने पास का दिया हाथ मे लिया, कृष्णकान्त ने पहले संदूकची खोल उससे विचित्र प्रकार की कुंजी ली, वाद को संदूकची की एक दराज़ खोली और खोज कर उससे विल निकाला। वाद को संदूकची से चश्मा निकाल कर नाक पर रखने लगे। चश्मा लगाते लगाते दो-चार दफे अफीम की पीनके आई—इसलिए चश्मा लगाने में कुछ देर हुई। बाद को चश्मा लग जाने पर कृष्णकान्त ने नीची निगाह करके देखा और हँस कर कहा, "रोहिणी! क्या मै बुड्ढा होकर विह्वल हो गया हूँ? यह देख, मेरे दस्तखत है?"

रोहिणी ने कहा, "बुड्ढे क्यो हो गये? हमे सिर्फ जबरन नातिन कहते हो इसके सिवा और क्या है? लेकिन अच्छा, अब मै जाती हूँ, काका से जाकर कहती हूँ।"

रोहिणी जब कृष्णकान्त के शयन-मन्दिर से बाहर निकली!!! गहरी आधी रात मे कृष्णकान्त सो रहे थे, एकाएक उनकी नींद टूटी। नींद टूटने पर उन्होने देखा कि उनके शयन-गृह का दिया नहीं जल रहा है। प्राय: रात भर दिया जलता था, लेकिन उस रात को दिया गुल हो गया है, देखा। नींद टूटने पर ऐसा भी शब्द उनके कान मे गया किसी ने जीभ घुमाई। ऐसा भी मालूम दिया कि जैसे घर मे

कोई आदमी टहल रहा हो। आदमी उनके पलँग के सिरहाने तक आया,—उनके तकिये मे हाथ लगाया। कृष्णकान्त अफ़ीम के नशे मे चूर थे, न सोते थे, न जागते थे, बहुत कुछ समझ नहीं सके। कमरे मे प्रकाश नहीं—यह भी अच्छी तरह नहीं समझे, कभी अध-सोये,—कभी अध-सचेत,—सचेत होने पर भी आँखे नहीं खुलतीं। एक दफ़ा दैवयोग से आँखे खुलने पर कुछ कुछ अँधेरा मालूम दिया सही, लेकिन कृष्णकान्त उस वक्त सोच रहे थे कि वे हरी घोष के मुकदमे मे जाली तमस्सुक दाखिल करने की वजह से जेल गये है। जेलखाने मे गहरा अँधेरा है। कुछ देर बाद एकाएक जैसे ताला खुलने की आवाज़ कुछ कुछ उनके कान मे गई। यह क्या जेलखाने का ताला बन्द हुआ? एकाएक कुछ चौंके। कृष्णकान्त ने सटक के लिए हाथ बढ़ाया, नही पाया—अभ्यासवश पुकारा, "हरिया।"

कृष्णकान्त अन्त पुर मे नहीं सोते थे, दीवानखाने मे भी नहीं सोते थे। दोनो के बीच मे एक कमरा था, उसी मे सोते थे। वहीं हरिया नाम का एक खानसामा पहरेदार के तौर पर लेटता था। और कोई नहीं। कृष्णकान्त ने उसे ही आवाज दी, "हरिया, हरिया।"

कृष्णकान्त सिर्फ एक बार हरिया को पुकार कर फिर अफीम की पीनक लेने लगे। असली विल उनके घर से उसी अवसर पर निकल गया। जाली विल उसकी जगह रख दिया गया।

पाँचवाँ परिच्छेद

दूसरे दिन सुबह रोहिणी फिर खाना पकाने बैठी, फिर वहीं हरलाल झाँकने लगा। भाग्यवश ब्रह्मानन्द मकान मे नहीं थे, नहीं तो कुछ और सोचते।

हरलाल धीरे धीरे रोहिणी के पास गया—रोहिणी ने वहुत एक फिर कर नहीं देखा। हरलाल ने कहा, "आँखे उठा कर देखो, हुंडी फट नहीं जायगी।"

रोहिणी देखकर मुसकराई। हरलाल ने कहा, "तुमने क्या किया ?"

चुराया हुआ विल ले आकर रोहिणी ने हरलाल को दिया। हरलाल ने पढ़ कर देखा—असली विल ही है। तव उस दुष्ट के होठो में मुस्कराहट नहीं समाई। विल हाथ में लेते हुए पूछा, "किस तरह ले आई ?"

रोहिणी ने वह कहानी शुरू की, लेकिन सही सही कुछ नहीं कहा। एक झूठा उपन्यास कहने लगी—कहते कहते हरलाल के हाथ से विल लेकर उसने दिखाया कि किस तरह विल एक कलमदान के भीतर पड़ा था। विल चुराने की वात खत्म होने पर रोहिणी एकाएक विल लिये हुए वहाँ से चली गई। जब लौट कर आई तव विल उसके हाथ मे नहीं था, देखकर हरलाल ने पूछा, "विल कहाँ रख आई ?"

रोहिणी—ठिकाने से रख आई हूँ।

हर०—अब ठिकाने से रख कर क्या होगा ? मैं अभी जाऊँगा।

रो०—अभी जाओगे ? इतनी जल्दी क्यो ?

हर०—मेरे रहने की गुंजाइश नहीं।

रो०—अच्छा जाओ।

हर० —विल ?

रो०—मेरे पास रहेगा।

हर०—वह क्या ! विल मुझे नहीं दोगी ?

रो०—तुम्हारे पास रहना जैसा है, मेरे पास रहना भी वैसा ही है।

हर०—अगर विल मुझे नहीं दोगी, तो चुराया क्यो ?

रो०—आप ही के लिए यह रहा। जब आप विधवा-विवाह करेंगे आपकी स्त्री को दूँगी। आप लेकर फाड़ डालेंगे।

हरलाल समझे। कहा, "ऐसा नहीं होगा—रोहिणी, रुपया जितना चाहो, दूँगा।"

रो०—लाख रुपया देने पर भी नहीं। जो कुछ देने के लिए कहा था वही चाहिए।

हर०—वह नहीं होगा। मै जाल करता हूँ, अपने ही हक के लिए। तुमने चोरी की, किसके हक के लिए?

रोहिणी का मुँह सूख गया। वह सर झुकाये बैठी रही, हरलाल कहने लगे, "मै जो कुछ भी होऊँ—कृष्णकान्त का पुत्र हूँ, जिसने चोरी की है उसे मै कभी अपनी गृहिणी नहीं वना सकता हूँ।"

रोहिणी एकाएक खडी होकर सर की धोती चढ़ाकर हरलाल के मुँह की तरफ देखने लगी, कहा, "मै चोर हूँ और तुम साधु हो। किसने मुझसे चोरी करने के लिए कहा था? किसने मुझे बड़ा लोभ दिखाया था? सरल स्त्री जान कर किसने धोखा दिया था? जिस शठता से बड़ी शठता नही, जिस वडी झूठ से बड़ी झूठ नहीं, जो इतर बर्वर भी ज़बान पर ला नहीं सकता, तुमने कृष्णकान्त राय के पुत्र होकर वही काम किया। हाय। हाय।। मै तुम्हारे अयोग्य हूँ? तुम्हारे जैसे नीच, शठ को ग्रहण करे, ऐसी अभागी कोई नहीं। तुम अगर आज औरत होते, तो तुम्हे आज, जिससे घर बुहारती हूँ वही दिखाती। तुम पुरुष हो अपने मान के साथ दूर हो जाओ।"

हरलाल समझा, यथोचित प्रसाद मिला है। अपने मान के साथ बिदा हो गया। जाने के समय होठ काट कर मुसकराता गया। रोहिणी भी समझी, ठीक ठीक प्रसाद मिला है,—दोनो तरफ से। वह भी जूड़ा कुछ कस कर भोजन पकाने बैठी। ग़ुस्से मे जूड़ा खुल गया था। उसकी आँखो मे आँसू आ रहे थे।

——

छठा परिच्छेद

तुम वसंत की कोयल जी भरकर कूकती हो, इस पर मुझे कुछ भी एतराज़ नहीं, लेकिन तुमसे मेरी आरज़ू है कि समय समझ कर कूको। समय में, असमय मे, सब समय मे कूकना अच्छा नहीं। देखो, बड़ी तलाश के बाद कलम-दावात वगैरह नज़र आये है, और भी अधिक खोज के बाद मुझे अपना मन मिला है, कृष्णकान्त के विल की बातें गढ़ गढ़ कर लिखने बैठा ही हूँ कि तुम आसमान से कूकीं,—"कूऊ! कूऊ!! कूऊ!!!"

तुम सुकंठ हो, मै मानता हूँ, किन्तु सुकंठ होने के कारण जब-तब किसी को कूकने का अधिकार नहीं। मेरे केश पलित है, कलम चलित है, इन सब स्थानों मे तुम्हारे कूकने से बहुत कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। परन्तु देखो, जब नये बाबू रुपये की ताड़ना में उलझे हुए, जमा-खर्च के पीछे सर मार रहे हों, तब तुम कहीं आफ़िस की चहारदीवारी के पास से पुकार उठीं, "कूऊ"—बाबू का फिर जमा-खर्च नहीं मिला। जब विरह-संतप्ता सुन्दरी प्रायः सारे दिन के बाद अर्थात् ९ बजे दो दाने पेट में डालने के लिए बैठी, खीर का कटोरा उठाया है कि तुम पुकार उठीं—"कूऊ" सुन्दरी का खीरवाला कटोरा ज्यो का त्यों रह गया—या अनमनी होकर उसमे नमक मिलाकर खाने लगी। कुछ हो, तुम्हारे कूकने में जादू है, नहीं तो, जब तुम मौलसिरी के पेड़ पर बैठी कूक रही थीं—और विधवा रोहिणी बाहो से कलशी लिये हुए पानी लेने जा रही थी—तब—लेकिन पहले पानी लेने के लिए जानेवाला परिचय दूँ।

अच्छा, तो बात यह है। ब्रह्मानन्द घोष दुखी आदमी—महरा, महरी नहीं लगाये हुए। यह सुभीते की बात हो या दिक्कत की, यह मै नहीं कह सकता। सुभीता हो, दिक्कत हो, जिसके नौकरानी

नही, उसके घर मे अधिक झूठी खबरे, तकरार और गंदगी, ये बाते नही। नौकरानी के नाम से देवता इन बातो की सृष्टि करते है। खास तौर से जिनके बहुत-सी नौकरानियाँ हो, उनके घर मे रोज महाभारत मचा रहता है,—रोज रावण-वध हुआ करता है। कोई नौकरानी भीमरूपिणी है, सदा झाड़ूरूपी गदा हाथ में लिये घर के रणक्षेत्र मे घूमती रहती है। कोइ दूसरी नौकरानी उसका प्रतिभट राजा दुर्योधन है, कोई भीष्म, द्रोण और कर्ण जैसे वीरो को भला-बुरा कह रही है, कोई कुम्भकर्णरूपिणी है, छ महीने सोती है; आँखे खुलने पर सब कुछ खा जाती है, कोई सुग्रीव है, गर्दन हिलाती हुई कुम्भकर्ण के वध का उद्योग कर रही है। आदि आदि।

ब्रह्मानन्द के यहाँ ऐसी बला नहीं थी, इसलिए पानी लाना, टहल करना रोहिणी पर था। दिन के पिछले पहर, दूसरे काम खतम होने पर रोहिणी पानी लेने जाती थी। जिस दिन की घटना लिख रहा हूँ उसक दूसरे दिन नियमित समय पर रोहिणी बगल मे घड़ा दबाये हुए पानी लेने जा रही थी। बाबुओ का एक बडा तालाब है—नाम है वारुणी—उसका पानी बड़ा मीठा है—रोहिणी वही पानी भरने जाती थी। आज वह जा रही थी। रोहिणी अकेली पानी लेने जाती है, जत्थे मे हलकी हलकी औरतो के साथ, हलकी मुसकराहट छोड़ते हुए, हलकी गगरियो मे हलका पानी लेने जाने का रोहिणी का अभ्यास नहीं।

रोहिणी की कलशी भारी है, चाल-चलन भी भारी है। लेकिन रोहिणी विधवा है। फिर भी विधवा का जैसा कोई ढर्रा नहीं। होठो मे पान रचा हुआ, हाथो मे कंगन, फीते की किनारीवाली साड़ी पहने, और कंधे पर सुन्दर रूप से गुँथी हुई, काली नागिन जैसी बल खाती हुई मनोमोहिनी वेणी। पीतल का घडा बगल मे, झूमती हुई चाल के साथ साथ धीरे धीरे वह कलशी भी नाच रही है—जैसे तरग तरंग

पर हँसी नाचती हो, उसी तरह वदन झुमाती हुई कलशी नाच रही है। दोनो पैर पेड़ से गिरे हुए फूल की तरह पृथ्वी पर मृदु मृदु पड़ रहे है—साथ ही वह रोज़ की कलशी ताल ताल पर नाच रही है। हिलती, झूलती, भरे पाल के जहाज़ की तरह ठुमकती, चौकती, चमकती रोहिणी सुन्दरी सरोवर को प्रकाशित करती हुई पानी भरने आ रही है—ऐसे समय वकुल की डाल पर वैठी वसंत की कोयल कूक उठी—

"कूऊ। कूऊ।। कूऊ।।।"

रोहिणी ने आँख उठाकर चारो तरफ देखा। मै कसम खाकर कह सकता हूँ, रोहिणी का वह ऊँचा चढ़ा हुआ काँपता विलोल कटाक्ष डाल पर वैठी अगर वह कोयल देख पाती तो उसी वक्त वह नाचीज चिड़िया तीर से विंध कर; उलटती हुई, दोनो पंजे समेट कर धम से ज़मीन पर आ जाती। लेकिन चिड़िया की क़िसमत से ऐसा नहीं था। कार्य और कारण की अनन्त परम्परा मे यह गाँठ नहीं वँधी थी—या चिड़िया के पूर्व जन्मार्जित सुकृत इतने नहीं थे। मूर्ख चिड़िया फिर कूकी—"कूऊ। कूऊ।। कूऊ।।।"

"दूर हो, कलमुँही।" कहती हुई रोहिणी चली गई। चली गई, मगर कोयल को नहीं भूली। हमें दृढ़ विश्वास है कि कोयल असमय मे कूकी थी, गरीव विधवा युवती अकेली पानी लेने जा रही थी, उस समय कूकना अच्छा नहीं हुआ। क्योकि कोयल की कूक सुनने पर वहुत-सी वुरी वुरी वाते याद आती है। न जाने क्या मैने खो दिया है? जैसा उसके खो जाने से ज़िन्दगी का सब कुछ असार हो गया है। जैसे अव उसे नहीं पाऊँगा। जैसे न जाने क्या है, जो नहीं हुआ; न जाने क्या है, जो नहीं मिलेगा; न जाने कहाँ मैने रत्न खो दिया है, कोई जैसे रोने के लिए पुकार रहा है, जैसे यह जीवन व्यर्थ ही वीता, सुख की एकमात्र चाह पूरी नहीं

हुई। जैसे इस संसार मे आनन्द सौन्दर्य का कुछ भी भोग नहीं किया।

फिर कूऊ, कूऊ, कूऊ। रोहिणी ने आँखे उठा कर देखा—निर्मल नील अनन्त गगन है, निःशब्द है अथच उस कूक के स्वर से बँधा हुआ है। देखा, आमो मे नये बौर आये है, सोने का रंग है, स्तर के स्तर श्यामल पत्र मिले हुए, शीतल सुगन्ध से परिपूर्ण है; काली मधुमक्खियो और भौंरो की गुजार है साथ ही वह उस कुहू स्वर के साथ बँधी हुई है। देखो, सरोवर के किनारे गोविन्दलाल की फुलवाड़ी है, उसमे फूल खिले है दल के दल, लाखो लाख, गुच्छे-गुच्छे मे, शाखा-शाखा मे, पत्ते-पत्ते मे, जहाँ-तहाँ फूल खिले है, कोई सफेद, कोई लाल, कोई पीला, कोई नीला, कोई छोटा, कोई बड़ा, कहीं मधुमक्खियाँ, कहीं भौरे उस कुहू-रव के साथ एक ही स्वर मे बँधे हुए। हवा के साथ उनकी खुशबू आ रही है। उसी पंचम स्वर मे बँधे हुए। और उस कुसुमित कुंज की छाँह मे गोविन्दलाल स्वयं खड़े हुए है। उनके बहुत घने, काले, घुँघराले बाल चम्पो की राशि से निर्मित, उनके कंधो पर चक्राकार पड़े हुए है, कुसुमित वृक्ष से अधिक सुन्दर, उस उन्नत देह पर एक खिली हुई लता की शाखा आकर झूम रही है—क्या स्वर मिला। यह भी उस कुहू-रव के साथ पंचम मे बँधा हुआ है। कोयल फिर एक अशोक के ऊपर से कूकी, "कू।" उस समय रोहिणी सरोवर की सीढ़ियो से उतर रही थी। सीढियाँ उतरकर घड़ा पानी मे बहाकर रोहिणी रोने के लिए बैठी।

क्यो रोने के लिए बैठी, यह मै नहीं जानता, मै स्त्री के मन की बात किस तरह कह सकता हूँ? लेकिन मुझे बड़ा सदेह होता है, उस दुष्ट कोयल ने रोहिणी को रुलाया है।

———

सातवाँ परिच्छेद

वारुणी पुष्करिणी को लेकर मै ज़हमत मे पड़ा। मै उसका वर्णन नहीं कर पा रहा। पुष्करिणी बहुत बड़ी है। नीले कॉच के आइने की तरह घास के फ्रेम मे कसी हुई है, उस घास के फ्रेम के बाद एक और फ्रेम है—बगीचे का फ्रेम—पुष्करिणी के चारो तरफ बाबुओ का बगीचा है। बगीचे के पेड़ और चहारदीवार जैसे खत्म नहीं होना चाहते। वह फ्रेम बहुत ही भड़कीला है। लाल, काला, सब्ज, गुलाबी, सफेद, ज़र्द तरह तरह के फूलो की नक्काशी। तरह तरह के फूलो के पत्थर जड़े। जगह जगह सफेद बैठकखाने; हर एक खाना बड़े बडे हीरे की तरह अस्तंगामी सूर्य की किरणो से चमक रहे है। और सर पर आकाश—वह भी बगीचे के फ्रेम मे कसा हुआ, वह नीला आइना। और वह नीला आकाश, और वह बगीचे का फ्रेम, और वह घासवाला फ्रेम, फल, फूल, पेड़, मकान सब उसी नीले जल के तालाब मे प्रतिबिम्बित हो रहे है। बीच बीच में वही कोयल पुकार रही है। यह सब एक तरह समझाये जा सकते है, परन्तु वह आकाश और वह तालाब, और उस कोयल की कूक के साथ रोहिणी के मन का क्या सम्बन्ध है, यह मै नहीं समझ पा रहा। इसी लिए मै कह रहा था कि इस वारुणी पुष्करिणी को लेकर मै बड़ी ज़हमत मे पड़ा।

मै भी ज़हमत मे पड़ा और गोविन्दलाल भी बड़े ज़हमत मे पड़े। गोविन्दलाल भी उस कुसुमित लता के अन्तराल को देख रहे थे कि रोहिणी आकर घाट की सीढ़ियो पर अकेली बैठी रो रही है। गोविन्दलाल बाबू ने मन ही मन सिद्धान्त किया, टोले मे किसी लड़की के साथ तकरार करके आकर रो रही है। हम गोविन्दलाल के सिद्धान्त पर उतना निर्भर नहीं करते। रोहिणी रोने लगी।

रोहिणी क्या सोच रही थी, हम कह नहीं सकते । परन्तु जान पड़ता है, सोच रही थी, किस अपराध से यह बाल-वैधव्य मेरे अदृष्ट मे घटित हुआ ? मैंने दूसरी से बढ़ कर ऐसा कौन-सा गुरुतर अपराध किया है कि मै इस पृथिवी पर कोई भी सुख-भोग न कर पाई ? किस अपराध से मुझे इस रूप-यौवन के रहते केवल सूखी लकड़ी की तरह यह जीवन पार करना पड़ा ? जो इस जीवन के सब सुखो से सुखी है । सोचो, गोविन्दलाल बाबू की स्त्री, वे मुझसे किस गुण मे अधिक गुणवती है ? किस पुण्य-फल से उनके भाग्य मे यह फल आया ? मेरे भाग्य में सिफर ? लेकिन, दूर हो यह सब, दूसरे का सुख देखकर मै व्याकुल नही, लेकिन मेरे कुल रास्ते बन्द क्यों है ? मै यह सुख रहते जीवन रख कर क्या करूँ ?

अच्छा तो, हम कह चुके, रोहिणी स्वभाव की अच्छी नही। देखो, इन इतने-सी मे कितनी हिसा है। रोहिणी मे बहुत-से दोप है। उसका रोना देखकर क्या रोने की इच्छा होती है। नहीं होती। परन्तु इतने विचार की जरूरत नही। दूसरे का रोना देखकर रोना ही अच्छा है। देवता के मेत्र कॉटो का खेत देख कर बारिश रोकते नहीं। अच्छा तो तुम लोग रोहिणी के लिए एक दफा आहा कहो। देखो, अब भी रोहिणी घाट मे बैठी सर पर हाथ रक्खे रो रही है। खाली घडा पानी पर हवा मे नाच रहा है।

अतत' सूर्य डूबा। क्रमश सरोवर के नीले पानी पर काली छाया पड़ी। अन्त मे अंधकार हो आया। चिड़ियॉ सब उड उड़-कर पेडो पर बैठने लगी, फिर घोसले की तरफ लौटी। गाये घर लौटी। तब चॉद उगा। अँधेरे पर मधुर चॉदनी फूटी, तब भी रोहिणी घाट पर बैठी रो रही है। उसका घड़ा तब भी जल पर तैर रहा है। तब गोविन्दलाल बगीचे से घर की तरफ चले। जाने के समय देखा कि तब भी रोहिणी घाट पर बैठी है।

अब तक अबला अकेली बैठी रो रही है, देखकर उन्हे कुछ दुःख हुआ। उनके मन मे आया कि यह स्त्री सच्चरित्रा हो, दुश्चरित्रा हो, यह भी उस जगत्-पिता की प्रेरित संसार-पतंग है, मै भी वही उनका प्रेरित संसार-पतंग; अतएव यह भी मेरी बहन है। अगर मै इसका दुख दूर कर सकूँ, तो क्यो न करूँ ?

गोविन्दलाल धीरे धीरे सीढ़ियाँ उतर कर रोहिणी के पास जाकर उसकी बग़ल मे चम्पे के रंगवाली उस चाँदनी मे खड़े हुए। रोहिणी देखकर चौक उठी।

गोविन्दलाल ने पूछा, "रोहिणी! तुम अब तक अकेली बैठी रो क्यो रही हो ?"

रोहिणी उठ कर खड़ी हुई, परन्तु बोली नहीं।

गोविन्दलाल ने फिर कहा, "तुम्हे क्या दुःख है, क्या मुझसे नहीं कहोगी ? अगर मै कोई उपकार कर सकूँ।"

जिस रोहिणी ने हरलाल के सामने मुखरा की तरह बातचीत की थी, गोविन्दलाल के सामने वह रोहिणी एक बात भी नहीं कह सकी। कुछ बोली नही। गढ़ी हुई पुतली की तरह उस सरोवर के सोपान की शोभा बढ़ाने लगी। गोविन्दलाल ने सरोवर के स्वच्छ जल मे भास्कर की कीर्ति जैसी उस मूर्ति की छाया देखी, पूर्णचन्द्र की छाया देखी और कुसुमित कांचन आदिक वृक्षो की छाया देखी। सब सुन्दर है। केवल निर्दयता असुन्दर है। सृष्टि करुणामयी है। मनुष्य अकरुण है। गोविन्दलाल ने प्रकृति के साफ साफ लिखे अक्षर पढ़े। रोहिणी से फिर कहा, "तुम्हे अगर किसी बात की तकलीफ हो, तो आज हो, कल हो, मुझसे कहो। खुद न कह सको तो मेरे मकान की स्त्रियो से मालूम कराओ।"

रोहिणी इस पर बोली। कहा, "एक दिन कहूँगी। आज नहीं। एक दिन तुम्हे मेरी बात सुननी होगी।"

गोविन्दलाल स्वीकृत होकर घर की तरफ गये। रोहिणी ने पानी मे उतर कर स्नान किया, फिर घड़ा पकड़ कर पानी मे डुबोया। घड़ा तब भक भक, गल गल करता हुआ बड़ा एतराज़ करता रहा। मै जानता हूँ खाली घड़े मे पानी भरने चलिए तो घड़ा, मिट्टी का घड़ा हो या मनुष्य का घड़ा हो, ऐसी ही आपत्ति किया करता है, बड़ा गुल-गपाड़ा मचाता है। बाद को खाली घड़ा पानी से भर जाने पर, रोहिणी घाट पर चढ़ कर, गीले वस्त्र से देह अच्छी तरह ढक कर धीरे-धीरे घर को चली। तब 'छलक, छलक, छल! ठनक, ठनक, ठन!'—इस तरह घड़े के और घड़े के पानी से और रोहिणी के कंगन से बातचीत होने लगी। और रोहिणी का मन भी उस बात-चीत से जा मिला।

रोहिणी के मन ने कहा—विल छलनेवाला काम!

पानी ने कहा—छलात्।

रोहिणी का मन—काम अच्छा नहीं हुआ।

कंगन ने कहा—ढिन्ना—नही सो तो नहीं हुआ।

रोहिणी का मन—अब उपाय?

कलसी—ठनक, ठनक, ठन—उपाय मै हूँ—रस्सी के साथ।

आठवाँ परिच्छेद

रोहिणी सवेरे-सवेरे खाना पकाने का काम पूराकर, ब्रह्मानन्द को खिलाकर, खुद विना कुछ खाये शयन-गृह का दरवाजा बन्द कर लेटी। सोने के लिए नहीं सोचने के लिए।

तुम दार्शनिक हो, विज्ञानविदो के मतामत को कुछ देर के लिए छोड़कर मेरे पास आओ, एक बात सुनो। सुमति नाम की देव-कन्या

और कुमति नाम की राक्षसी ये दोनो सदा मनुष्य के हृदय मे विचरण करती है। और सदा एक दूसरे से तकरार करती रहती है। जैसे दो बाघिने मरी गऊ को लेकर एक दूसरी से लड़ती है, जैसे दो सियारिने लाश के पीछे तकरार करती है, या जिन्दा आदमी को लेकर वैसा ही करती है, आज इस एकान्त शयनागार मे रोहिणी को लेकर वे दोनो उसी तरह घोर विवाद करने लगीं। सुमति ने कहा,—"ऐसे आदमी का भी सर्वनाश किया जाता है ?"

कुमति—विल तो हरलाल को दिया नहीं, सर्वनाश कब किया ?

सुमति—कृष्णकान्त का विल कृष्णकान्त को लौटा दो।

कुमति—वाह ! जब कृष्णकान्त मुझसे पूछेगे, "यह विल तुम्हे कहाँ मिला और मेरी जिन्दगी मे यह एक जालवाला कहाँ से आया।" तब मै क्या कहूँगी ? कितनी मजेदार बात है ! काका को और मुझे थाना जाने के लिए कहती हो ?

सुमति—तो कुल बाते गोविन्दलाल से खोल कर, कह कर, उनके पैरो मे रोकर क्यो नही पड़ती ? वे दयालु है, अवश्य तुम्हे बचा लेगे।

कुमति—वही बात। गोविन्दलाल को ज़रूर ये सब बाते कृष्ण-कान्त से कहनी होगी, नहीं तो विल का बदलाव नहीं होगा। कृष्णकान्त अगर पुलिस के सुपुर्द करे तो गोविन्दलाल बचायेगे किस तरह ? बल्कि एक और परामर्श है अभी चुप करके रहो। पहले कृष्णकान्त मरे इसके बाद तुम्हारी सलाह के अनुसार गोविन्दलाल के पास जाकर उनके पैरो पड़ूँगी। तब उन्हे विल दूँगी।

सुमति—तब व्यर्थ होगा। जो विल कृष्णकान्त के घर मे पाया जायगा, वही सही माना जायगा। गोविन्दलाल वह विल बाहर निकालने पर जाल के अपवाद मे आ सकते है।

कुमति—तो चुपचाप बैठी रहो, जो कुछ होना है वह होगा। अस्तु, सुमति चुप हो गई, उसकी पराजय हुई। इसके बाद दोनों सन्धि करके सख्यभाव से एक दूसरे काम मे लगीं। वह वापी-तीरवाली चाँदनी मे प्रतिभासित, चम्पकदाम-निर्मित देव-मूर्ति को लेकर रोहिणी ने मानस-नेत्रों के सामने रक्खा; रोहिणी देखने लगी, देखती देखती रोने लगी। उस रात मे रोहिणी की आँखे नहीं लगीं।

नवाँ परिच्छेद

तभी से रोहिणी रोज बगल मे घडा दबाये वारुणी पुष्करिणी मे पानी लेने जाती है, रोज कोयल कूकती है, रोज उसी गोविन्दलाल को बगीचे के भीतर देखती है, रोज सुमति-कुमति मे सन्धि-विग्रह घटते है। सुमति-कुमति का विवाद तो मनुष्य सह लेता है, परन्तु सुमति-कुमति का मेल बड़ा ही विपत्तिजनक है। जब सुमति, कुमति का भाव धारण करती है, कुमति, सुमति का काम करती है, तब कौन सुमति है, पहचाना नहीं जा सकता। आदमी सुमति के नाम से कुमति के वशीभूत होता है। कुछ हो, कुमति हो, सुमति हो, गोविन्दलाल का रूप रोहिणी के हृदय-पट पर दिन पर दिन गहरे से गहरे रंग से अंकित होने लगा। चित्र-पट अँधेरा है, चित्र उज्ज्वल। दिन पर दिन चित्र उज्ज्वलतर, चित्र-पट गहरे से गहरा अंधकार होने लगा। तब ससार उसकी आँखों मे—खैर, पुरानी बात उठाने की आवश्यकता नहीं। रोहिणी सहसा गोविन्दलाल के प्रति मन ही मन बहुत ही गुप्त रूप से प्रणयासक्त हुई। कुमति की फिर विजय हुई।

किन्तु इतने दिनो के वाद उसकी यह दुर्दशा हुई, यह मै समझ नहीं सका और समझ भी नहीं सकूँगा। यही रोहिणी गोविन्दलाल को बाल-काल से देख रही है, कभी उसके प्रति रोहिणी का चित्त आकृष्ट नहीं हुआ। आज एकाएक क्यो हुआ? मै नहीं जानता। जो जो कुछ संघटित हुआ था, वह वह मैंने कहा है। वह दुष्ट कोयल की कूक, वह वापी-तट पर रुदन, वह समय, वह स्थान, वह चित्त का भाव, इसके वाद गोविन्दलाल की असमय करुणा, फिर गोविन्दलाल के प्रति रोहिणी का अपराध के विना ही अन्याय-पूर्ण आचरण, इन उपलक्षो से कुछ काल तक लगातार गोविन्दलाल ने रोहिणी के मन मे स्थान पाया था। इससे क्या हुआ है क्या नहीं, यह मुझे नहीं मालूम, जैसी घटना हुई, मै वही लिख रहा हूँ।

रोहिणी बड़ी बुद्धिमती है। एक साथ ही समझी कि यह मरने की बात है। यदि गोविन्दलाल को इस बात का लेश भी मालूम हो जाय, तो वह कभी उसकी छाँह के पास से भी नहीं गुजरेगा। मुमकिन है, गाँव के वाहर निकाल दे। किसी दूसरे से यह कहने की बात नहीं। रोहिणी बड़े यत्न से मन की बात मन मे छिपाये रही।

लेकिन छिपी आग जिस तरह भीतर से जलाती आती है, रोहिणी का चित्त वैसा ही होने लगा। जिन्दगी का भार उठाना रोहिणी के लिए कष्टदायक हुआ। रोहिणी मन ही मन दिनरात मृत्यु-कामना करने लगी।

कितने आदमी मन मे मृत्यु-कामना करते है, कौन इसकी संख्या रखता है? मुझे मालूम देता है, जो सुखी है, वही दुखी है, उनमे अधिकांश जन ही मन, वाणी और शरीर से मृत्यु की कामना करते है। इस पृथ्वी का सुख सुख नहीं, सुख भी दु:खमय है, किसी सुख मे भी सुख नहीं, कोई भी सुख सम्पूर्ण नहीं, इसी लिए अधिकांश जन मृत्यु की कामना करते है और दु:खी, दु:ख

का भार और अधिक न ढो सकने के कारण मृत्यु को पुकारते है। परन्तु किसके पास मृत्यु आती है? पुकारने से मृत्यु नहीं आती। जो सुखी है, जो मरना नहीं चाहता, जो सुन्दर है, जो युवा है, जो आशा से भरा है, जिसकी आँखो मे पृथिवी नन्दन-विपिन है, मृत्यु उसी के पास आती है। रोहिणी-जैसी किसी के पास नहीं आती। इधर मनुष्य की इतनी कम शक्ति है कि मृत्यु को वह बुला नहीं ला सकता। एक छोटी-सी सुई बेध लेने पर, आधी बूँद दवा खा लेने पर यह नश्वर जीवन विनष्ट हो सकता है, यह चंचल जीवन-बिम्ब काल-समुद्र मे मिल सकता है, किन्तु आन्तरिक मृत्यु-कामना करने पर भी प्राय: कोई इच्छापूर्वक वह सुई नही बेधता, वह आधी बूँद दवा नहीं पीता। कोई कोई ऐसा कर सकते है, किन्तु रोहिणी उस दिल की नहीं, रोहिणी वैसा नहीं कर सकती।

परन्तु इस विषय मे रोहिणी कृत-संकल्प हुई। जाली विल जलाया नहीं जायगा। इसका एक सीधा उपाय था। कृष्णकान्त से कहने पर या किसी से कहला देने पर ही काम बन जाता कि महाशय का विल चुराया गया, दराज खोल कर जो विल है उसे पढ़ कर देखिए। रोहिणी ने चुराया था, यह ज़ाहिर करने की ज़रूरत नहीं, किसी ने चुराया, कृष्णकान्त के मन मे एक दफा जरा भी सदेह पैदा होने पर वे सन्दूक खोल कर विल पढ़ कर देखेगे, तो जाली विल देखकर नया विल लिखवायेगे। गोविन्दलाल की सम्पत्ति की रक्षा होगी, फिर भी कोई मालूम नहीं कर सकेगा कि किसने विल चुराया था। परन्तु इसमे एक आफत है—कृष्णकान्त जाली विल पढ़ने पर मालूम कर सकेगे कि यह ब्रह्मानन्द के हाथ के अक्षर है, तब ब्रह्मानन्द बड़ी आफत मे फँसेगे। इसलिए दराज़ मे जो जाली विल है, वह किसी दूसरे के सामने निकाला नहीं जा सकता।

अस्तु, हरलाल के लोभ से रोहिणी ने गोविन्दलाल का जो गुरुतर अनिष्ट सिद्ध कर रक्खा था, उसके प्रतिकार के लिए बहुत व्याकुल होने पर भी वह अपने चाचा की रक्षा के विचार को कुछ न कर सकी। अंत मे उसने यह सिद्ध किया कि जिस तरह वह असली विल चुराकर वह जाली विल रख आई थी, उसी तरह फिर असली विल रख कर जाली विल लायेगी।

आधी रात को रोहिणी सुन्दरी असली विल लेकर हिम्मत के सहारे अकेली कृष्णकान्त राय के कमरे की तरफ चली, खिड़कीवाला दरवाज़ा बन्द है, सदर फाटक पर जहाँ चार दरबान चारपाई पर बैठे हुए अधखुली आँखो और अधरुँधे गले से पीलू रागिनी के बाप की सराध कर रहे थे, रोहिणी वहीं उपस्थित हुई। दरबानो ने पूछा, "तू कौन है ?" रोहिणी ने कहा, "सखी।"

सखी उस घर की एक जवान नौकरानी है, इसलिए दरबानो ने फिर कुछ नहीं कहा। रोहिणी बिना विघ्न के घर के भीतर गई और पहले के जाने हुए रास्ते से कृष्णकान्त के शयनागार मे प्रवेश किया। पूरा सुरक्षित होने के कारण कृष्णकान्त के शयनगृह के दरवाज़े बंद नहीं रहते थे। घुसने के वक़्त कान लगाकर रोहिणी ने सुना, बिना किसी बाधा के कृष्णकान्त खर्राटे ले रहे है। तब धीरे धीरे बिना आहट के विल-चोर ने कमरे के भीतर प्रवेश किया। प्रवेश कर पहले ही दिया गुल कर दिया। बाद को पहले की तरह कुंजी ली और पहले की तरह अँधेरे मे टटोल कर दराज़ खोली।

रोहिणी बहुत सावधान है, हाथो की गति बहुत लघु। फिर भी कुंजी खोलते खट से थोड़ी-सी खटक हुई। उस आवाज़ से कृष्ण-कान्त की नींद टूट गई।

कृष्णकान्त ठीक समझ न सके कि कैसे आवाज़ आई। कोई आहट उन्होने नहीं दी, कान लगाये रहे। रोहिणी ने भी देखा कि

खर्राटा बन्द हो गया। रोहिणी समझी कि कृष्णकान्त की नींद टूट गई। रोहिणी चुपचाप स्थिर हो गई।

कृष्णकान्त ने पूछा, "कौन है ?" किसी ने कोई जवाब नहीं दिया।

अब यह वह रोहिणी नही। रोहिणी अब दुबली, सताई हुई विवश है—शायद कुछ डरी भी,—कुछ साँस का शब्द हुआ था। वह शब्द कृष्णकान्त के कानो मे गया। कृष्णकान्त ने हरी को कुछ दफा पुकारा, रोहिणी अगर चाहती तो इस अवसर पर भाग सकती थी, परन्तु इससे गोविन्दलाल का प्रतिकार नही हुआ। रोहिणी ने सोचा, "बुरे काम के लिए उस दिन जो हिम्मत की थी, आज अच्छे काम के लिए वह क्यो नहीं कर सकूँगी ? पकड़ी जाऊँ तो पकड़ी जाऊँगी।"

रोहिणी भागी नही। कृष्णकान्त ने हरी को कई आवाज़े लगाने पर भी कोई उत्तर नही पाया। हरी दूसरी जगह सुख की खोज मे गया था—जल्द लौटेगा। तब कृष्णकान्त ने तकिया के नीचे से दियासलाई निकाल कर एकाएक आग जलाई। सलाई के जलते ही देखा, कमरे मे दराज के पास औरत है।

जलती हुई सलाई से कृष्णकान्त ने बत्ती जलाई। औरत को सम्बोधन करके पूछा, "तुम कौन हो ?"

रोहिणी कृष्णकान्त के पास गई। कहा, "मै रोहिणी हूँ।"

कृष्णकान्त ताज्जुब मे आये, पूछा, "इतनी रात को अँधेरे में यहाँ क्या कर रही थी ?"

रोहिणी ने कहा, "चोरी कर रही थी।"

कृष्ण०—मज़ाक रहने दो। ऐसे समय तुम्हे यहाँ क्यो देखा ? बतलाओ। तुम चोरी करने के लिए आई हो, इस पर एकाएक हमे विश्वास नहीं हुआ। लेकिन चोर की हालत मे ही तुम्हे देख रहे है।

रोहिणी ने कहा, "तो मै जो कुछ करने के लिए आई हूँ, आपके सामने ही करती हूँ। बाद को मेरे प्रति जैसा व्यवहार आपको उचित जान पड़े कीजिएगा। मै पकड़ मे आई हूँ, भाग नहीं सकती। भगूँगी नहीं।"

यह कह कर रोहिणी दराज के पास गई, दराज़ को खींच कर खोला, उसके भीतर से जाली विल निकाल कर सच्चा विल रक्खा। बाद को जाली विल फाड़ कर उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले।

"हाँ हाँ, वह क्या फाड़ती हो? देखे, देखे।"

कह कर कृष्णकान्त चीत्कार कर उठे। परन्तु उनके चिल्लाते चिल्लाते रोहिणी ने विल के टुकड़ों को आग मे लगा कर भस्मीभूत कर दिया।

क्रोध से कृष्णकान्त की आँखे लाल हो गई। उन्होने पूछा, "यह क्या जलाया तुमने?"

रोहिणी—एक जाली विल। कृष्णकान्त काँप उठे, "विल! विल!! हमारा विल कहाँ है?"

रो०—आपका विल दराज के भीतर है, पहले खोल कर देखिए तो?

इस युवती की स्थिरता और निश्चिन्तता देखकर कृष्णकान्त विस्मय मे आ गये। सोचा, "कोई देवता छल करने के लिए तो नहीं आया?"

कृष्णकान्त ने तब दराज़ खोल कर देखा, एक विल उसके भीतर है। उसे बाहर निकाला, फिर चश्मा निकाला। विल पढ़ कर देखा तो मालूम हुआ कि वह उनका सच्चा विल ही है। विस्मित होकर फिर पूछा "तुमने जलाया क्या?"

रो०—एक जाली विल।

कृष्ण०—जाली विल किसने तैयार किया? तुम्हे वह कहाँ मिला?

रो०—किसने तैयार किया, यह मै नहीं कह सकती—वह मुझे इसी दराज़ के भीतर मिला।

कृष्ण०—तुम्हे किस तरह मालूम हुआ कि दराज के भीतर जाली विल है?

रो०—यह मै नहीं कह सकती।

कृष्णकान्त कुछ देर तक सोचते रहे। अंत मे कहा, "अगर हम तुम्हारी तरह की थोड़ी बुद्धिवाली स्त्री के भीतर पैठ नहीं सके तो इस सम्पत्ति की इतने दिनो तक रक्षा किस तरह की? यह जाली विल हरलाल का बनाया हुआ है। जान पड़ता है तुम उसके पास से रुपया लेकर जाली विल रख कर असली विल जलाने आई थीं। इसके बाद पकड़ मे आने पर, डर से जाली विल तुमने फाड़ डाला। सही बात है या नहीं?"

रो०—नहीं, ऐसा नहीं।

कृष्ण०—ऐसा नहीं? तो फिर क्या?

रो०—मै कुछ नहीं कहूँगी। मै आपके कमरे मे चोर की तरह बैठी थी, मुझसे जैसा बर्ताव आप करना चाहे, कीजिए।

कृष्ण०—तुम बुरा काम करने के लिए आई थी, इसमे संदेह नहीं, नहीं तो इस तरह चोर की तरह क्यो आतीं? इसका उचित दंड अवश्य दूँगा। तुम्हे पुलिस के हवाले नहीं करूँगा, किन्तु कल तुम्हारा सर मुडा कर, मट्ठा डाल कर, तुम्हे गॉव के बाहर निकाल दूँगा। आज तुम कैद रहो।

रोहिणी उस रात कैद रही।

दसवाँ परिच्छेद

वह रात पार होने पर शयनगृह के मुक्त वातायन-पथ में गोविन्दलाल खड़े है। ठीक ठीक प्रभात नहीं हुआ—कुछ बाकी है। अभी तक घर के आँगनवाले कामिनीकुंज में कोयल पहले पहल नहीं कूकी। लेकिन दोयल ने चहकना शुरू कर दिया है, ऊषा की शीतल वायु बह चली है—गोविन्दलाल झरोखा खोल कर उसी उद्यान की मल्लिका, गन्धराज, कुटज आदि के परिमल से उठनेवाली शीतल प्रभात वायु के सेवन के लिए उसके पास खड़े है। साथ ही उनकी बगल में एक पतली-दुबली बालिका आकर खड़ी हुई।

गोविन्दलाल ने पूछा, "तुम फिर यहाँ क्यों आई ?

बालिका ने जवाब दिया, "तुम यहाँ क्यों आये ?" कहना नहीं होगा कि यह बालिका गोविन्दलाल की स्त्री है।

गो०—मैं ज़रा हवा खाने के लिए आया हूँ, यह भी तुमसे नहीं सहा गया ?

बालिका ने जवाब दिया, "सहा क्यों जायेगा ? फिर वही खाने की बात ? घर की चीज़े खाकर मन नहीं भरता, बाहर की हवा खाने के लिए झाँकते है ?"

गो०—घर की चीजे इतनी क्या खाई ?

"क्यो अभी मुझसे गालियाँ खाई है।"

गो०—तुम जानती नहीं, भौरा। गालियाँ खाने पर अगर बंगाली लड़कों का पेट भरा होता, तो इस देश के आदमी अब तक सपरिवार हाजमे की शिकायत से मर गये होते। यह चीज बहुत सीधी तरह बगाली के पेट में हज्म हो जाती है। तुम एक दफा और नथ हिलाओ भौरा। मै एक दफा और दखूँ। गोविन्दलाल की पत्नी का यथार्थ नाम कृष्णमोहिनी, या कृष्ण-कामिनी, या आनन्दमंजरी या ऐसा ही कुछ उसके माता-पिता का

रक्खा हुआ था, यह इतिहास मे लिखा नही। बिना प्रयोग के वह नाम लुप्त हो गया था। उसका आदरवाला नाम भ्रमर या भौंरा था। सार्थकता के कारण यह नाम प्रचलित हुआ था। भौंरा काली थी, भौंरा नथ हिलाने मे आपत्ति प्रकट करने के लिए नथ खोल कर एक डिब्बे मे रख कर, गोविन्दलाल की नाक पकड़ कर हिला दी, बाद को गोविन्दलाल के मुँह की तरफ़ देखकर मधुर मधुर हँसने लगी,—मन ही मन समझने लगी जैसे कोई बड़ी कीर्त्ति का काम किया हो। गोविन्दलाल भी उसके मुँह की तरफ अतृप्त आँखो से देख रहे थे। उसी समय सूर्योदयसूचक प्रथम रश्मि-किरीट पूर्वाकाश मे देख पड़ा,—उसकी मृदुल ज्योतियाँ भू-मंडल मे प्रतिफलित होने लगीं। नया प्रकाश पूर्व की तरफ से आकर पूर्व को मुँह किये हुए भौंरा के मुँह पर पडा, उस उज्ज्वल, साफ़, कोमल, श्वेत मुख-कान्ति पर कोमल प्रभात-किरण गिरती हुई उसकी विस्फारित लीलाचल आँखो पर चमकी, उसके स्नि ध उज्ज्वल कपोलो पर प्रभासित हुई। हँसी और चितवन मे, वह किरण गोविन्दलाल के आदर और प्रभात की हवा मे मिलित हो गई।

इसी वक्त सो कर उठी हुई नौकरानियो मे एक गुल-गपाड़ा मचा। इसके बाद घर बुहारना, पानी छींटना, बासन मलना आदि की एक सप-सप्, छप-छप, छन-छन, खन्-खन् होने लगी, एकाएक यह आवाज बंद हो गई, "अरी माई री, अब क्या होगा।" "क्या आफत है" "कैसी हिम्मत।" "कैसी सीनाजोरी।" रह रह कर हँसी-मजाक और व्य य के शब्द उठने लगे। सुन कर भ्रमर बाहर आई।

नौकरानियो का सम्प्रदाय भ्रमर को बहुत मानता नहीं था, इसके कुछ कारण थे। पहले तो भ्रमर बालिका थी, इस पर भ्रमर स्वय गृहिणी नही थी, उसके सास और ननद थी, इसके बाद भ्रमर जितना हँसने मे पटु थी, शासन मे उतना नहीं थी। भ्रमर को देखकर नौकरानियो के दल ने बड़ा गुल मचाया—

नम्बर १—और तुमने सुना, बहू जी ?

नं० २—ऐसी गज़ब की बात किसी ने कभी सुनी नहीं ;

नं० ३—कितनी हिम्मत ! औरत के झाड़ू लगा आऊँ चल कर ?

नं० ४—सिर्फ झाडू ? बहू जी कहो तो मैं उसकी नाक काट कर ले आऊँ।

नं० ५—किसके पेट मे क्या है, अरी माई, यह कैसे समझूँ ?

भ्रमर ने हँस कर पूछा, "पहले यह तो बता कि हुआ क्या है, इसके बाद जैसा जी मे आये, करना।" उस वक्त फिर पहले की तरह गुल-गपाड़ा शुरू हुआ।

नं० १—अरे, तुमने नहीं सुना ? सारे टोले मे बात फैल गई—

नं० २—लोगो ने कहा—शेर के घर मे स्यार ?

नं० ३—जी चाहता है, झाड़ू से औरत का कुल ज़हर उतार दूँ।

नं० ४—क्या कहूँ बहू जी, बौनी होकर चाँद को हाथ बढ़ाये !

नं० ५—भीगी बिल्ली पहचान मे नहीं आई, डूब मर चुल्लू भर पानी मे !

भ्रमर ने कहा, "तू।"

नौकरानियाँ सब मिल कर कहने लगीं "हमारा क्या कसूर है। हमने क्या किया है ? लेकिन यह हमे मालूम है कि कहीं भी कुछ होगा तो कसूर समझा जायेगा हमारा। हमारा अब कहीं सहारा नही, इसलिए मिहनत कर पेट भरने आई है।" वक्तृता समाप्त कर उनमे से दो-एक आँखो मे आँचल लगाकर रोने लगीं। एक का मरी लड़की का शोक उमड़ चला। भ्रमर व्याकुल हुई—लेकिन हँसी भी नहीं रोक सकी। कहा, "तुम सबको चुल्लू भर पानी इसलिए चाहिए कि तुम लोग यह नहीं बतला सकी कि बात क्या है ? क्या हुआ है ?"

तब फिर चारो तरफ से चार-पॉच तरह के गले चले। पहले गले से भ्रमर उस अनन्त वक्तृता की परम्परा से यह भावार्थ लगा सकी कि पिछली रात को मालिक महाशय के शयन-कक्ष मे कोई चोरी हो गई है। किसी ने कहा, चोरी नही, डाका है,—किसी ने कहा, सनद ले गये है, किसी ने कहा, नहीं, सिर्फ चार-पॉच चोर आये थे, और एक लाख रुपये का कम्पनी का कागज़ ले गये है।

भ्रमर ने पूछा, "इसके वाद किस औरत की नाक काटने चली थी?"

न० १—रोहिणी की—और किसकी?

नं० २—वही आवारा तो कुल सत्यानाश की जड़ है।

नं० ३—सुना है कि वही डाकुओ का दल साथ ले आई थी।

नं० ४—जैसा काम है वैसा ही फल।

नं० ५—अब मरे सजा काटती हुई।

भ्रमर ने पूछा, "रोहिणी चोरी करने आई थी, तुम लोगो को कैसे मालूम हुआ?"

"क्यो, वह पकड़ी जो गई है। कचहरी की गारद मे कैद है।"

भ्रमर ने जैसा सुना वैसा गोविन्दलाल से जाकर कहा, गोविन्दलाल ने सोच कर गर्दन हिलाई।

भ्र०—गर्दन जो हिलाई?

गो०—मुझे विश्वास नही होता कि रोहिणी चोरी करने आई थी। तुम्हे विश्वास होता है?

भौरा ने कहा, "नहीं।"

गो०—क्यो तुम्हे विश्वास नहीं होता, मुझे बतलाओ तो। लोग तो कह रहे है।

भ्र०—तुम्हे विश्वास क्यो नहीं होता, मुझे बतलाओ।

गो०—अच्छा तो दूसरे वक्त बतलाऊँगा—तुम्हे विश्वास क्यों नहीं होता, पहले तुम कहो।

भ्र०—पहले तुम कहो।

गोविन्दलाल हँसे। कहा, "तुम पहले।"

भ्र०—क्यों पहले कहूँ ?

गो०—मेरी सुनने की साध होती है।

भ्र०—सच सच कहूँ ?

गो०—हाँ।

भ्रमर 'कहूँ कहूँ' कर भी नहीं कह सकी। लाज से सर झुकाये हुए चुपचाप खड़ी रही। गोविन्दलाल समझे, पहले भी समझा था—इसी लिए इतने दबाव से पूछ रहे थे। रोहिणी निरपराधिनी है, भ्रमर को इस पर दृढ़ विश्वास था। अपने अस्तित्व पर जितना विश्वास है, उसकी निर्दोषता पर भ्रमर को उतना विश्वास था। परन्तु उस विश्वास का कोई दूसरा कारण न था—सिर्फ गोविन्द-लाल ने कहा था, "वह निर्दोष है, मुझे ऐसा विश्वास है।"

गोविन्दलाल के विश्वास पर ही भ्रमर का विश्वास था। गोविन्दलाल यह समझ गये थे। वे भ्रमर को पहचानते थे इसी लिए उस काली को इतना प्यार करते थे। हँस कर गोविन्दलाल ने कहा, "मै बतलाऊँ, क्यो तुम रोहिणी की तरफ हो ?"

भ्र०—क्यो ?

गो०—वह तुम्हे काली न कह कर खिलती हुई साँवली कहती है।

भ्रमर ने कुटिल कटाक्ष कर कहा, "चलो, चलो।"

गोविन्दलाल ने कहा, "चलता हूँ" यह कह कर गोविन्दलाल चले।

भ्रमर ने उनके कपडे पकड कर कहा—"कहाँ जाते हो ?"

गो०—कहाँ जाता हूँ, बतलाओ तो।

भ्र०—अब के बतलाऊँ ?

गो०—अच्छा बतलाओ।

भ्र०—रोहिणी को बचाने के लिए

"हाँ।" कह कर गोविन्दलाल ने भौंरा का मुँह चूमा। पर-दुख-कातर हृदय को पर-दुख-कातर समझा—इसी लिए गोविन्दलाल ने भ्रमर का मुँह चूमा।

ग्यारहवाँ परिच्छेद

गोविन्दलाल कृष्णकान्त राय की सदर कचहरी में गये। कृष्णकान्त सुबह के वक्त कचहरी में बैठे थे, गद्दी पर तकिया लगाये बैठे हुए सोने की फर्शी में अम्बरी तम्बाकू पीते हुए मृत्यु-लोक में स्वर्ग का अनुकरण कर रहे थे। एक तरफ कागजों की राशियाँ बंद थीं—चिट्ठा, खतियान, दाखिला, जमावासिल, वाकी, स्याहा, रोकड़ वगैरह। दूसरी तरफ नायब, गुमाश्ता, कारकुन, मुहर्रिर, तहसीलदार, अमीन, सिपाही, रिआया। सामने सर झुकाये हुए घूँघट काढ़े रोहिणी।

गोविन्दलाल बड़े आदर के भतीजे थे। उन्होंने जाते ही पूछा, "क्या होता है, ताऊ जी?"

उनके गले की आवाज सुनकर रोहिणी ने घूँघट कुछ उठा कर उनकी ओर क्षणिक कटाक्ष किया। कृष्णकान्त ने उनकी बात पर क्या जवाब दिया, उसकी तरफ गोविन्दलाल बहुत ध्यान नहीं दे सके। सोचते रहे, इस कटाक्ष का क्या मतलब है? अन्त में सिद्धान्त किया, "इस कटाक्ष का अर्थ है—भिक्षा।" कैसी भिक्षा? गोविन्दलाल ने सोचा, आज की भिक्षा और क्या होगी? विपत्ति से उद्धार। उस वापी के किनारे सोपान के ऊपर खड़े खड़े जो बात-

चीत हुई थी, वह भी इस वक्त उन्हे याद आई। गोविन्दलाल ने रोहिणी से कहा था, "तुम्हे अगर किसी बात की तकलीफ हो, तो आज हो, या कल हो, मुझसे बतलाना।"

आज तो सही सही रोहिणी को तकलीफ है, जान पड़ता है कि इस इशारे से रोहिणी ने उन्हे समझाया।

गोविन्दलाल ने सोचा, "तुम्हारा कल्याण करूँ, मेरी यह इच्छा है; क्योंकि इस लोक मे तुम्हारा सहायक कोई नही देख रहा हूँ। किन्तु, तुम जिस आदमी के हाथ पड़ी हो, तुम्हारी रक्षा सहज नहीं।"

यह सोच कर ताऊ जी से उन्होने खुल कर पूछा, "क्या हुआ है ताऊ जी?"

वृद्ध कृष्णकान्त एक दफा कुल बाते शुरू से अखीर तक गोविन्दलाल से कह गये थे, मगर गोविन्दलाल रोहिणी के कटाक्ष की व्याख्या मे उलझे थे, उनके कहने की ओर कान नहीं दिया। भतीजे ने फिर पूछा, "क्या हुआ है, ताऊ जी?" सुन कर वृद्ध ने मन में सोचा, "हो चुका। जान पड़ता है, लड़का इस औरत का चाँद जैसा मुँह देखकर भुला गया!"

कृष्णकान्त ने फिर शुरू से आखिर तक पिछली रातवाली बाते गोविन्दलाल से कहीं। समाप्त कर कहा, "यह उसी हरा पाजी की कारसाजी है। जान पड़ता है यह औरत उससे रुपया रिश्वत लेकर जाली विल रख कर असली विल चुराने आई थी इसके बाद पकड़ मे आने पर इसने जाली विल फाड़ डाला।"

गो०—रोहिणी क्या कहती है?

कृष्ण०—वह और क्या कहेगी? कहती है, ऐसा नहीं।

गोविन्दलाल ने रोहिणी की तरफ फिर कर पूछा, "ऐसा नहीं, तो फिर क्या है, रोहिणी?"

रोहिणी मुँह बगैर उठाये गद्गद कंठ से बोली, "मै आप लोगों के हाथ मे पड़ी हूँ, जो कुछ करना हो, कीजिए। मै और कुछ नहीं कह सकती।"

कृष्णकान्त ने कहा, "बदजाती देख ली ?"

गोविन्दलाल ने सोचा, "इस पृथ्वी मे सभी बदज़ात नही। इसके भीतर बदज़ात के सिवा और कुछ रह सकते है।" खुल कर पूछा, "इसके लिए आपने क्या हुक्म दिया है ? इसे क्या थाने में भेजिएगा ?"

कृष्णकान्त ने कहा, "मेरे पास थाना और फौजदारी क्या है ? मै ही थाना हूँ, मै ही मजिस्टर हूँ, मै ही जज। विशेष यह कि इस अदना औरत को जेल भेज कर मेरा कौन-सा पुरुषार्थ बढ़ेगा।"

गोविन्दलाल ने पूछा, "तो फिर क्या कीजिएगा ?"

कृष्ण०—इसका सर मूँड कर, मट्ठा डालकर,सूप की हवा दिलाते दिलाते गाँव से बाहर निकलवा दूँगा। मेरे आलोक मे फिर न आ सके।

"गोविन्दलाल ने फिर रोहिणी की तरफ फिर कर पूछा, "क्या कहती हो, रोहिणी ?"

रोहिणी ने कहा, "हानि क्या है ?"

गोविन्दलाल ताज्जुब मे आये। कुछ सोच कर कृष्णकान्त से कहा, "एक निवेदन है।"

कृष्ण०—क्या ?

गो०—इसे एक दफ़ा छोड़ दीजिए। मै जामिन हो रहा हूँ—दिन के १० बजे इसे ला दूँगा।

कृष्णकान्त ने सोचा, "शायद मैंने जो कुछ सोचा है वही है। चिरंजीव को कुछ ज्यादा गरज है, देख रहे है।" खुल कर पूछा. "कहाँ जायगी ? क्यो छोड़े ?"

गोविन्दलाल ने कहा, "असली बात क्या है यह मालूम करना निहायत लाज़िमी है, इतने आदमियो के सामने असली बात यह नहीं कह सकती। इसे अन्दर ले जाकर पूछ-ताछ करूँगा।"

कृष्णकान्त ने कहा, "अपनी नानी की दुम करोगे। इस काल के लड़के बड़े बेहया हो गये है। लेकिन रहो बेटा, तुम पर एक चाल हम भी चलेंगे।

यह कह कर कृष्णकान्त ने कहा, "अच्छा तो है।" कह कर कृष्णकान्त ने एक सिपाही से कहा, "देखो! इसे साथ लेकर, एक नौकरानी के हवाले कर दो, मझली बहूरानी के पास भेज दे, देखना, जैसे भाग न जाय।"

सिपाही रोहिणी को ले गया। गोविन्दलाल चले गये। कृष्ण-कान्त ने सोचा, "राम राम! लड़के हो क्या गये ?"

बारहवाँ परिच्छेद

गोविन्दलाल ने अंत पुर मे आकर देखा कि भ्रमर रोहिणी को लेकर चुपचाप बैठी है। अच्छी बाते कहने की इच्छा है, परन्तु कहीं इस मामले मे अच्छी बात कहने पर भी रोहिणी को रुलाई आये, इसलिए वह भी नहीं कह पा रही। गोविन्दलाल को आया देखकर भ्रमर जैसे उत्तरदायित्व से बची। जल्दी जल्दी कुछ दूर जाकर इशारे से गोविन्दलाल को बुलाया। गोविन्दलाल भ्रमर के पास गये। भ्रमर ने गोविन्दलाल से धीमी आवाज मे पूछा, "रोहिणी यहाँ क्यो ?"

गोविन्दलाल ने कहा, "मै एकान्त मे उससे कुछ पूछूँगा। इसके बाद मेरे भाग्य मे जो कुछ होगा, होगा।"

भ्र०—क्या पूछोगे ?

गो०—उसके मन की बात। मुझे उसके पास अकेला छोड़ जाने मे यदि तुम्हे डर हो, तो न हो आड़ से सुनना।

भौरा बहुत अप्रतिभ हुई। लाज से आँखे ढक कर दौड़ती हुई वह जगह छोड़ कर भग गई। सीधे पाकशाला मे पहुँच कर पीछे से पाचिका के बाल पकड कर खींचती हुई बोली, "ऐ महराजिन! पकाती पकाती एक रूप-कथा कहो।"

इस तरह गोविन्दलाल ने रोहिणी से पूछा, "यह वृत्तान्त क्या खोल कर कुल का कुल मुझसे कहोगी?" कहने के लिए रोहिणी की छाती फटी जा रही थी—परन्तु जो जाति जीती हुई जलती चिता पर चढ़ी थी, रोहिणी भी उसी जाति की आर्य-कन्या थी। कहा, "मालिक से कुछ हाल सुना तो है।"

गो०—मालिक ने कहा, "तुम जाली विल रख कर असली विल चुराने के लिए आई थीं।" क्या यही है ?

रो०—नही।

गो०—तो क्या।

रो०—कह कर क्या होगा ?

गो०—तुम्हारा भला हो सकता है ?

रो०—आप विश्वास करे, तब न ?

गो०—विश्वासयो य बात होने पर क्यो विश्वास नही करूँगा ?

रो०—विश्वासयोग्य बात नही।

गो०—मेरे पास क्या विश्वासयो‌ग्य है और क्या अविश्वास-यो‌ग्य, यह मै जानता हूँ, तुम किस तरह समझोगी ? मै अविश्वास-यो‌ग्य बात पर भी कभी कभी विश्वास करता हूँ।

रोहिणी मन ही मन बोली, "नही तो मै तुम्हारे लिए मरने क्यो चलूँगी ? कुछ हो, मै तो मरने चली हूँ, परन्तु तुम्हे एक दफा तौल

कर मरूँगी।" खुल कर कहा, "यह आपकी महिमा है। परन्तु आपसे इस दुख की कथा कहने पर भी क्या होगा?"

गो०—यदि मैं तुम्हारा कोई उपकार कर सकूँ।

रो०—क्या उपकार कीजिएगा?

गोविन्दलाल ने सोचा, "इसकी जोड़ नहीं। कुछ हो, यह कातर है—इसे सहज ही नहीं छोड़ना चाहिए।" खुल कर कहा, "अगर हो सकेगा तो मालिक से अनुरोध करूँगा। वह तुम्हे छोड़ देंगे।"

रो०—और अगर आप अनुरोध न करें तो वे मेरा क्या करेंगे?

गो०—सुना तो है?

रो०—मेरा सर मुड़ा देंगे, मट्ठा ढालेंगे, देश से बाहर निकाल देंगे। इसका भला-बुरा मेरी समझ मे नहीं आ रहा। इस कलंक के बाद देश से बाहर निकाल देने मे ही मेरा उपकार है। मुझे निकाल न देने पर मै आप ही यह देश छोड़ कर चली जाऊँगी। और इस देश मे मुँह दिखाऊँगी किस तरह? मट्ठा ढालना बड़ा भारी दंड नहीं, धोने से धुल जायगा। रहा यह बाल—

यह कह कर रोहिणी ने एक दफा तरङ्गो से क्षुब्ध, काले तड़ाग जैसे अपने केश-दाम की तरफ निगाह की—कहने लगी—ये बाल, आप कैंची लाने के लिए कहिए, मै बहू जी के बालो की रस्सी बिनवाने के लिए कुल के कुल काट दूँगी।"

गोविन्दलाल व्यथित हुए। लम्बी साँस छोड़ कर बोले, "मै समझा, रोहिणी! कलंक ही तुम्हारा दंड है। उस दंड से रक्षा न मिली तो दूसरे दंड के लिए तुम्हे आपत्ति नहीं।"

रोहिणी इस दफा रोई। हृदय मे गोविन्दलाल को शत-सहस्र धन्यवाद देने लगी। कहा, "अगर आप समझे है, तो मै पूछती हूँ, इस कलंकरूपी दंड से क्या आप मेरी रक्षा कर सकेंगे?"

गोविन्दलाल कुछ देर सोच कर बोले, "मै कह नही सकता। असली बात सुनने पर कह सकूँगा कि रक्षा कर सकूँगा या नही।"

रोहिणी ने कहा, "क्या जानना चाहते है, पूछिए।"

गो०—तुमने जो कुछ जलाया है, वह क्या है ?

रो०—जाली विल।

गो०—तुम्हे कहाँ मिला ?

रो०—मालिक के कमरे मे, दराज़ मे।

गो०—ज़ाली विल वहाँ किस तरह गया ?

रो०—मै ही रख गई थी, जिस दिन असली विल की लिखा-पढ़ी हुई, रात को असली विल चुराकर जाली विल रख आई थी।

गो०—क्यो, तुम्हारा क्या प्रयोजन था ?

रो०—हरलाल बाबू का अनुरोध था।

गोविन्दलाल ने कहा, "तो कल रात को फिर क्या करने आई थीं ?"

रो०—असली विल रख कर जाली विल ले जाने के लिए।

गो०—क्यों, जाली विल मे क्या था ?

रो०—बड़े बाबू के बारह आने—आपका एक पैसा।

गो०—फिर विल बदलने के लिए क्यो आईं ? मैने तो कोई अनुरोध नही किया। रोहिणी रोने लगी। बडे कष्ट से रोदन संवरण कर कहा, "नहीं, अनुरोध नही किया—किन्तु जो कुछ इस जन्म मे मुझे कभी नही मिला—जो इस जन्म मे और कभी नहीं पाऊँगी—वह आपने मुझे दिया था।"

गो०—वह क्या है, रोहिणी ?

रो०—उसी वारुणी-पुष्करिणी के किनारे, याद कीजिए।

गो०—क्या रोहिणी ?

रो०—क्या है ? इस जन्म मे मैं कह नहीं सकती—क्या है। और कुछ नहीं कहिएगा। इस रोग की चिकित्सा नही—मेरी मुक्ति

नही—मै विष पाने पर खाती, परन्तु वह आपके मकान मे नहीं। आप मेरा दूसरा उपकार नहीं कर सकते है—परन्तु एक उपकार कर सकते है—मुझे एक दफा छोड़ दीजिए, मै रो आऊँ। इसके बाद अगर मै बची रहूँगी, तो न हो मेरा सर मूड़ कर मट्ठा डाल कर मुझे देश-निकाला दे दीजिएगा।

गोविन्दलाल समझे। दर्पण के प्रतिबिम्ब की तरह रोहिणी का हृदय उन्होने देखा। समझे, जिस मंत्र से भ्रमर मुग्ध है, यह भुजंगी भी उसी मंत्र से मुग्ध हुई है। उन्हे आनन्द नही हुआ—गुस्सा भी नहीं आया—जो हृदय समुद्रवत् था, उस समय वह उद्वेलित हुआ, उसमे दया का उच्छ्वास उठा। उन्होने कहा, "रोहिणी, मृत्यु ही जान पड़ता है, तुम्हारे लिए अच्छी है, परन्तु मृत्यु की आवश्यकता नहीं। इस संसार मे हम काम करने के लिए आये है—अपना अपना काम पूरा किये बगैर क्यो मरे ?"

गोविन्दलाल इधर-उधर करने लगे। रोहिणी ने कहा, "बतलाइए न ?"

गो०—तुम्हे यह देश छोड़ जाना होगा।

रो०—क्यो ?

गो०—तुम तो पहले ही कह रही थीं, तुम यह देश छोड़ जाना चाहती हो।

रो०—मै कह रही थी लज्जा के कारण, आप क्यो कहते है ?

गो०—जिससे तुम्हारी मेरी फिर मुलाकात न हो।

रोहिणी ने देखा, गोविन्दलाल सब समझ गये है। मन ही मन बहुत अप्रतिभ हुई—वहुत सुखी हुई, अपनी कुल तकलीफ़ भूल गई। फिर उसे बचने की साध हुई। फिर उसमे देश मे रहने की वासना पैदा हुई। मनुष्य बड़ा ही पराधीन है।

रोहिणी ने कहा, "मै अभी जाने के लिए राज़ी हूँ, परन्तु कहाँ जाऊँगी ?"

गो०—कलकत्ता। वहाँ मै अपने एक दोस्त को पत्र लिख रहा हूँ। वे तुम्हे एक मकान ख़रीद देगे, तुम्हारा रुपया नहीं लगेगा।

रो०—मेरे चाचा के लिए क्या होगा ?

गो०—वे तुम्हारे साथ जायँगे, नहीं तो तुम्हे कलकत्ता जाने के लिए न कहता।

रो०—वहाँ दिन पार कैसे करूँगी ?

गो०—मेरे मित्र तुम्हारे चाचा के लिए एक नौकरी तलाश कर देगे।

रो०—चाचा देश छोड़ने को तैयार क्यो होगे ?

गो०—क्या तुम उन्हे इस मामले के बाद राज़ी नहीं कर सकती ?

रो०—कर सकूँगी, परन्तु आपके ताऊ जी को राजी कौन करेगा ? वे मुझे छोड़ेगे क्यो ?

गो०—मै अनुरोध करूँगा।

रो०—तो यह मेरे कलंक पर कलंक है। कुछ आपका भी कलंक है।

गो०—सच है, तुम्हारे लिए मालिक के पास भ्रमर से अनुरोध कराऊँगा। तुम इस समय भ्रमर की खोज मे जाओ। उसे भेज कर खुद इस मकान मे रहो। बुलाने पर जैसी मुलाकात हो।

रोहिणी सजल नयनो से गोविन्दलाल को देखती देखती भ्रमर की खोज मे गई। इस तरह कलंक मे, बंधन मे, रोहिणी का पहला प्रणय-सम्भाषण हुआ।

तेरहवाँ परिच्छेद

भ्रमर ससुर से अनुरोध करने के लिए किसी तरह स्वीकृत नहीं हुई, कहा, "बड़ी लज्जा लगती है, छिः ! लाचार, गोविन्दलाल खुद कृष्णकान्त के पास गये। कृष्णकान्त उस समय भोजन के बाद पलँग पर अधलेटी हालत मे फर्शी की नली हाथ मे लगाये सो रहे थे। एक ओर उनकी नासिका-नाद से, गमक-गमक से, तान-मूर्च्छनादि से नानाविध राग-रागिनियाँ अलाप रही थीं, और दूसरी ओर उनका मन अफीम के प्रसाद से तीनो लोक मे विचरनेवाले घोड़े पर सवार होकर नाना स्थानो मे पर्यटन कर रहा था। रोहिणी का चाँद जैसा मुखड़ा, जान पड़ता है, बुड्ढे के मन के भीतर पैठ गया था,—चाँद कहाँ नहीं उगता ? नहीं तो बुड्ढा अफीम के नशे मे इन्द्राणी के कंधे पर ठुड्ढी क्यो रखता ? कृष्णकान्त देख रहे हैं, रोहिणी एकाएक इन्द्र की शची बन कर महादेव की गोशाला मे साँड़ चुराने गई है। नन्दी ने त्रिशूल हाथ मे लिये साँड़ की सानी करने के लिए जाकर उसे पकड़ा है। देख रहे है, नन्दी रोहिणी के खुले हुए बालो को पकड़कर खींच रहा है और षडानन का मोर उन गड़ी तक आते हुए घुँघराले बालो के गुच्छो को फन काढ़े हुए साँप की श्रेणी समझ कर निगल गया—ऐसे समय स्वयं षडानन मोर की ज्यादती देखकर नालिश करने के लिए महादेव के पास पहुँच कर पुकार रहे है, "ताऊ जी !"

कृष्णकान्त विस्मित होकर सोच रहे है, कार्तिक महादेव को किस रिश्ते से ताऊ जी कह कर पुकार रहे है ? ऐसे समय कार्तिक ने फिर आवाज़ दी, "ताऊ जी !"

कृष्णकान्त ने बहुत परेशान होकर कार्तिक के कान ऐंठ देने के लिए हाथ बढ़ाया। साथ ही कृष्णकान्त के हाथ की नली हाथ से खुल कर झनझनाती हुई पान के डब्बे पर गिरी, पान का डब्बा

झनझनाता हुआ पीकदान पर गिरा और नली, डव्वा, पीकदान सबके सब एक साथ सहगमन करते हुए भूतलशायी हुए। उस आवाज से कृष्णकान्त की नीद टूट गई। उन्होने आँखे खोलकर देखा कि सचमुच ही कार्तिकेय हाजिर है। मूर्तिमान् स्कन्दवीर की तरह गोविन्दलाल उनके सामने खड़े है—पुकार रहे है, "ताऊ जी।"

कृष्णकान्त हक-बकाकर उठ बैठे और पूछा, "क्या है, बेटा गोविन्दलाल ?" गोविन्दलाल को वृद्ध वहुत प्यार करते थे।

गोविन्दलाल भी कुछ अप्रतिभ हुए—कहा, "आप सोइए, किसी ऐसे काम से नहीं आया।"

यह कह कर गोविन्दलाल ने पीकदान उठाकर सीधा करके पनडब्बा उठाकर, जहाँ का वही रख कर नली कृष्णकान्त के हाथ मे दी।

परन्तु, कृष्णकान्त बड़े सख्त आदमी है—सहज ही भुलावे मे नही आते—मन ही मन कहने लगे, कुछ नही, यह बदज़ात फिर उस चाँद जैसे मुँहवाली औरत की बात कहने आया है" खुल कर कहा, "नही, हमारी नीद पूरी हो गई—अब नही सोयेगे।"

गोविन्दलाल कुछ जहमत मे पड़े। रोहिणी की वात गोविन्दलाल को कहते सुबह उनको कोई लज्जा नहीं हुई, इस वक्त कुछ लज्जा होने लगी। बात कहूँ कहूँ, करते हुए कह नहीं सके। रोहिणी के साथ वारुणी तालाब पर वात हुई थी, क्या इस वक्त इसलिए लज्जा है ?

बुड्ढा तमाशा देखने लगा। गोविन्दलाल कोई बात कह नहीं रहे। देखकर खुद जमींदारी की वात चलाई—जमीदारी की वात के वाद, सांसारिक वात, सासारिक बात के वाद मुकदमे की वात, फिर भी वुड्ढा रोहिणी के रास्ते से भी नहीं गुजरा। गोविन्दलाल रोहिणी की वात किसी तरह भी नहीं चला सके। कृष्णकान्त मन ही मन बहुत हँसने लगे। बुड्ढा वड़ा दुष्ट है।

लाचार, गोविन्दलाल लौटे जा रहे थे,—तब कृष्णकान्त ने प्रियतम भतीजे को पुकारते हुए लौटाल कर पूछा, "सुबह के वक्त जिस औरत को ज़ामिन होकर तुम ले गये थे क्या उसने कुछ स्वीकार किया ?"

तब गोविन्दलाल ने रास्ता पाकर, जो जो कुछ रोहिणी ने कहा था, संक्षेप मे कहा। वारुणी-पुष्करिणीवाली बाते छिपा रक्खीं। सुनकर कृष्णकान्त ने पूछा, "इस वक्त उसके लिए क्या करना तुम्हारा अभिप्राय है ?"

गोविन्दलाल लज्जित होकर बोले, "आपका जो अभिप्राय है, हम लोगो का भी वही अभिप्राय है।"

कृष्णकान्त ने मन ही मन हँस कर, चेहरे पर मुसकराहट का कोई भी लक्षण न दिखलाते हुए कहा, "हम उसकी बात पर विश्वास नहीं करते। उसका सर मुड़ा कर, मट्ठा ढाल कर, गाँव के बाहर निकाल दे—क्या कहते हो ?"

गोविन्दलाल चुप हो रहे। तब दुष्ट बुड्ढे ने कहा—"और तुम लोग अगर ऐसा ही निश्चय करो कि उसका कोई दोष नहीं, तो उसे छोड़ दो।"

तब गोविन्दलाल ने साँस छोड़कर, बुड्ढे के हाथ से निष्कृति पाई।

चौदहवाँ परिच्छेद

रोहिणी गोविन्दलाल की अनुमति के अनुसार अपने चाचा के साथ विदेश चलने की बातचीत करने आई। चाचा से कुछ न कह कर घर के बीच मे बैठ कर रोहिणी रोने लगी।

"यह हरिद्राग्राम छोड़कर मै कहीं जा नहीं सकूँगी, बिना खाये मर जाऊँगी। मै कलकत्ता जाने पर गोविन्दलाल को देख नहीं पाऊँगी, मै नहीं जाऊँगी। यह हरिद्राग्राम मेरा स्वर्ग है, यहीं गोविन्दलाल का मकान है। यह हरिद्राग्राम ही मेरा श्मशान है, यहीं मै जल कर मरूँगी। श्मशान मे नही मर पाता, ऐसा भाग्य भी है। मै यदि यह हरिद्राग्राम छोड़ कर नहीं जाऊँगी तो मेरा कोई क्या कर सकता है? कृष्णकान्त राय मेरा सर मुडा कर, मट्ठा ढालकर, गॉव से निकाल देगा? मै फिर आऊँगी। गोविन्दलाल नाराज होगा? हो तो हो—फिर भी मै उसे देखूँगी। मेरी आँखे तो कोई काढ़ नहीं लेगा? मै नहीं जाऊँगी। मै कलकत्ता नही जाऊँगी—कहीं भी नही जाऊँगी। जाऊँगी तो यम के यहाँ जाऊँगी। और कहीं नहीं।"

यह सिद्धान्त निश्चित कर, अभागिन उठकर, दरवाजा खोलकर फिर 'पतंगवद्वह्निमुख विविक्षु:—उसी गोविन्दलाल के पास चली, मन ही मन कहने लगी—"हे जगदीश्वर, हे दीनानाथ! दुखियो के एकमात्र सहाय, मै बडी दु खिनी हूँ, बडे दु:ख मे पड़ी हूँ—मेरी रक्षा करो—मेरे हृदय की यह असह्य प्रेम-वह्नि बुझा दो—मुझे अब और न जलाओ। जिसे देखने जा रही हूँ—उसे जितनी दफा देखूँगी, उतनी दफा—मुझे असह्य पीड़ा है—अनंत सुख है। मै विधवा हूँ—मेरा धर्म गया—सुख गया—जान गई—रहा क्या प्रभो? रक्खूँगी क्या प्रभो? हे देवता! हे दुर्गा!—हे काली!—हे जगन्नाथ! मुझे सुमति दो—मेरे प्राण स्थिर करो—मै यह कष्ट और सह नहीं सकती।"

फिर भी वह स्फीत, हृत, अपरिमित—प्रेमपरिपूर्ण हृदय न रुका। कभी सोचा, जहर खा लूँ; कभी सोचा, गोविन्दलाल के पैरो पड़कर, अंत:करण को मुक्त करके कुल बाते कहूँ; कभी सोचा, भाग जाऊँ; कभी सोचा, वारुणी मे डूब मरूँ। कभी सोचा, धर्म को तिलांजलि देकर, गोविन्दलाल को छीनकर किसी दूसरे देश भग

जाऊँ। रोहिणी रोती हुई गोविन्दलाल के पास फिर पहुँची। गोविन्दलाल ने पूछा, "क्यो कलकत्ता जाने का निश्चय हुआ ?

रो०—नहीं ।

गो०—वह क्या ? अभी अभी मेरे पास स्वीकार कर गई थीं ?

रो०—जा नहीं सकूँगी ।

गो०—कह नहीं सकता । विवश करने का मेरा कोई अधिकार नहीं—लेकिन जाने पर अच्छा होता ।

रो०—किस तरह अच्छा होता ?

गोविन्दलाल ने सर झुका लिया। कोई वात कहनेवाले वे कौन है ?

रोहिणी तव आँसुओ को छिपकर पोछती हुई घर लौट गई। गोविन्दलाल अत्यन्त दुःखित होकर सोचने लगे। तव भौरा नाचती हुई वहाँ आकर हाजिर हुई, पूछा, "सोचते क्या हो ?"

गो०—तुम्हीं वतलाओ ।

भ्र०—मेरा काला रूप ।

गो० - ऐह ।

भौरा अत्यन्त कोप मे आकर वोली, "वह क्या ? मुझे नहीं सोच रहे ? मेरे सिवा पृथ्वी मे तुम्हारा दूसरा चाँद भी है ?"

गो०—है नही तो क्या ? सवमे सर्वमयी हो। मै दूसरे को सोच रहा हूँ। भ्रमर ने तव वाहो मे गोविन्दलाल का गला लपेट कर, मुँह चूम कर, आदर से गीला कर, अधखुले, मधुर मधुर मुसकराहट मिले स्वर से पूछा, "दूसरे, किस आदमी को सोच रहे हो, वतलाओ ।"

गो०—तुमसे कहने पर क्या होगा ?

भ्र०—वतलाओ तो !

गो०—तुम नाराज होगी ।

भ्र०—हूँगी तो हो लूँगी, वतलाओ ।

गो०—जाओ देख आओ. सबका खाना-पीना हुआ या नहीं।

भ्र०—देखूँगी फिर—बतलाओ कौन आदमी है ?

गो०—स्याही का काँटा—रोहिणी को सोच रहा था।

भ्र०—क्यों रोहिणी को सोच रहे थे ?

गो०—यह मैं नहीं जानता।

भ्र०—जानते हो. बतलाओ।

गो०—आदमी क्या आदमी को नहीं सोचता ?

भ्र०—नहीं। जो जिसको प्यार करता है. वही उसको सोचता है। मैं तुम्हे सोचती हूँ—तुम मुझे सोचते हो।

गो०—तो मैं रोहिणी को प्यार करता हूँ।

भ्र०—झूठी बात—तुम मुझे प्यार करते हो—और किसी को तुम्हें प्यार करना नहीं चाहिए, क्यों रोहिणी को सोच रहे थे, बतलाओ ?

गो०—विधवा को मछली खानी चाहिए ?

भ्र०—नहीं।

गो०—विधवा को मछली नहीं खानी चाहिए. फिर भी तारिणी की मा मछली क्यों खाती हैं ?

भ्र०—उसका जले मुँह, जो कुछ नहीं करना वही करती है।

गो०—मेरा भी जले मुँह, जो कुछ नहीं करना वही करता हूँ। मैं रोहिणी को प्यार करता हूँ। चट से गोविन्दलाल के गाल पर भौंरा ने एक ठोना मारा। बड़े गुस्से में आकर कहा, "मैं श्रीमती भौंरा देवी हूँ. मेरे सामने झूठी बात ?"

गोविन्दलाल हार मान गये। भ्रमर के कंधे पर हाथ रख कर, प्रफुल्ल-नीलोत्पल-दलतुल्य मधुरिमामय उसके मुख-मंडल को अपने कर-पल्लव में लेकर मधुर अथच गम्भीर, कातर कंठ से गोविन्दलाल ने कहा. झूठी बात ही है भौंरा ! मैं रोहिणी को नहीं प्यार करता। रोहिणी मुझे प्यार करती है।"

तीव्र वेग से गोविन्दलाल के हाथ से अपना हाथ छुड़ाकर भौंरा दूर जा खड़ी हुई। हाँफती हुई कहने लगी,—"अभागी—गाज-मारी बँदरिया मर जाय! मर जाय! मर जाय! मर जाय! मर जाय!"

गोविन्दलाल ने हँस कर कहा, "अभी से इतनी गालियाँ क्यो? तुम्हारे सात राजाओं का धन एक मणि अभी तक तो उसने छीन नहीं लिया।"

भौंरा कुछ अप्रतिभ होकर बोली, ऐसा क्यो—"ऐसा भी कर सकती है?—लेकिन औरत ने तुम्हारे सामने कहा क्यो?"

गो०—ठीक, भौंरा—उसका कहना उचित नहीं था—यही सोच रहा था। मैंने उसे यहाँ से उठ कर कलकत्ता मे चलकर रहने के लिए कहा था—खर्च तक देना मंजूर किया था।

भौंरा—इसके वाद?

गो०—इसके वाद वह राजी नहीं हुई।

भौंरा—अच्छा, क्या मै उसे एक सलाह दे सकती हूँ?

गो०—दे सकती हो, परन्तु वह सलाह मै सुनूँगा।

भौंरा—सुनो।

यह कह कर भौंरा ने खीरी खीरी कह कर एक नौकरानी को पुकारा, तव क्षीरदा—उर्फ क्षीरमणि, उर्फ क्षीराब्धितनया उर्फ सिर्फ खीरी आकर खड़ी हुई। मोटे मोटे कडे पैरो में, कमर मे एक लड़ की मोटी करधनी—चितवन मे हँसी भरी हुई।

भौंरा ने कहा, "खीरी, रोहिणी मुँह-झौंसी के पास तू अभी एक दफा जा सकती है?

खीरी ने कहा, "क्यो नहीं जा सकूँगी, क्या कहना होगा?"

भौंरा ने कहा, "मेरा नाम लेकर कह आ कि उन्होंने कहा है कि तुम मरो।"

"अभी जाती हूँ।" यह कह कर चीरदा उर्फ खीरी कड़ा बजाती हुई चली। जाते वक्त भौंरा ने कह दिया, "क्या कहती है मुझसे कहे जाना।"

अच्छा कह कर खीरी चली गई। थोड़ी देर मे ही लौट आकर कहा, "कह आई हूँ"।

भौंरा—उसने क्या कहा ?

खीरी—उसने कहा, उपाय कह देने के लिए कहना।

भौंरा—तो फिर जा, कह आ कि वारुणी तालाब मे—शाम के वक्त—गले मे कलसी बाँध कर—समझी ?

खीरी—समझी।

खीरी गई, फिर लौट आई।

भौंरा ने पूछा, "वारुणी तालाब की बात कही थी ?"

खीरी—कहा था।

भौंरा—उसने क्या कहा ?

खीरी—कहा कि अच्छा।

गोविन्दलाल ने कहा, "छि: भौंरा !"

भौंरा ने कहा, सोचो नही। वह मरेगी नही, जो तुम्हे देखकर दीवानी हो गई है, वह क्या मर सकती है ?"

——

पन्द्रहवाँ परिच्छेद

दैनिक कार्य समाप्त करके प्रतिदिन के नियम के अनुसार गोविन्दलाल सूर्यास्त के समय वारुणी के किनारेवाले बगीचे मे टहलने लगे। बगीचे मे टहलना गोविन्दलाल का एक प्रधान सुख

था। कुल पेड़ों के नीचे दो-चार दफा घूमते थे, परन्तु हम उन पेड़ों की बात इस वक्त नहीं कहेंगे। वारुणी के किनारे बगीचे मे, एक ऊँची पत्थर की वेदी थी, वेदी मे एक सफेद पत्थर की स्त्री-मूर्ति जड़ी हुई थी। स्त्री-मूर्ति अधढॅकी, ऑखे नीची किये हुए, एक घड़े से अपने दोनो पैरो पर जैसे पानी ढाल रही हो—उसके चारो ओर खिलते रंग के छोटे छोटे सपुष्प वृक्ष मिट्टी के आधार मे रक्खे हुए—जीरानियॉ, वर विना, यूफरिया, चन्द्रमल्लिका—नीचे उस वेदिका को घेर कर कामिनी, जूही, मल्लिका, गन्धराज आदि सुगन्ध थे, देशी फूलो की कतार ख़ुशबू से आकाश को आमोदित कर रही है—उसी के बाद बहुविध उज्ज्वल, नील, पीत, रक्त, श्वेत नाना वर्णों के देशी, विलायती, नयन-रंजन-कारी जातियोवाले पेडों की श्रेणी। वहीं बैठना गोविन्दलाल को अच्छा लगता था। चॉदनी रात मे कभी कभी भ्रमर को बगीचा घुमाने के लिए लाकर वहीं बैठते थे। भ्रमर पाषाण-मयी स्त्री-मूर्ति को अर्द्धावृता देखकर उसे कलमुँही कह कर गाली देती थी—कभी कभी अपने ही अंचल से उसके अंग ढक देती थी—कभी कभी उत्तम वस्त्र घर से साफ लाकर उसे पहना जाती थी—कभी कभी उसके हाथ का घडा पकडकर खींचतान करती थी।

वहीं जा गोविन्दलाल संध्या-समय बैठे हुए दर्पण की जैसी वारुणी की जल-शोभा देखने लगे। देखते देखते देखा, उस पुष्करिणी की चौड़ी पत्थर की बनी सीढ़ियो से रोहिणी कॉख मे घड़ा दबाये हुए उतर रही है। कुछ न हो तो चल सकता है, पानी न हो तो नहीं चलता। इस दु:ख के दिन मे भी रोहिणी पानी लेने आई है। पानी मे उतर कर रोहिणी नहा सकती है—निगाह के अन्दर रहना उनके लिए अनुचित है, यह सोचकर वे वहॉ से हट गये।

बहुत देर तक गोविन्दलाल इधर-उधर टहले। अंत मे सोचा, अब तक रोहिणी उठ गई होगी। यह सोच कर फिर उसी वेदिका के नीचे जल सींचती हुई पाषाण-सुन्दरी के पदप्रान्त मे आकर बैठे।

फिर उसी वारुणी की शोभा देखने लगे। देखा, रोहिणी या कोई स्त्री या पुरुष कहीं नहीं। कही कोई नही, परन्तु उस पानी पर एक घड़ा तैर रहा है।

किसका घड़ा? एकाएक सन्देह उपस्थित हुआ—कोई पानी लेने के लिए आकर डूब तो नही गई? रोहिणी अभी अभी पानी लेने आई थी—तब एकाएक सुबह की बात याद आई। याद आई कि भ्रमर ने रोहिणी को कहला भेजा था—वारुणी तालाब मे—शाम के वक्त घड़ा गले मे बाँधकर। याद आया, रोहिणी ने जवाब में कहा था, "अच्छा।"

गोविन्दलाल उसी वक्त घाट पर आये, आखिरी सीढ़ी पर खड़े हुए तालाब के चारो तरफ देखने लगे। पानी शीशे की तरह स्वच्छ है। घाट के नीचे जल का तल तक दिखाई पड़ता है। देखा, स्वच्छ स्फटिक-मंडित स्वर्ण-प्रतिमा जैसी रोहिणी जल-तल मे लेटी हुई है। पानी का अँधेरा तल आलोकमय कर रही है।

——

सोलहवाँ परिच्छेद

गोविन्दलाल ने उसी वक्त पानी मे उतर कर, डूब कर, रोहिणी को उठा कर सीढ़ियो पर लेटाया। देखा, रोहिणी जी रही है इसमे सन्देह है, उसकी चेतना लुप्त है, साँस नहीं चल रही।

बगीचे से गोविन्दलाल ने एक माली को पुकारा। माली की सहायता से रोहिणी को उठा कर, बगीचे के प्रमोदगृह मे शुश्रूषा के लिए ले गये। जीवन मे हो, मरण मे हो, रोहिणी ने अन्त मे गोविन्दलाल के गृह मे प्रवेश किया। भ्रमर के सिवा और किसी स्त्री ने कभी उस उद्यान-गृह मे प्रवेश नही किया।

आँधी के बाद आये हुए पानी से धुले हुए चम्पक की तरह वह मृत नारी-देह पलँग पर लम्बमान होकर, प्रज्वलित दीप के प्रकाश में शोभा पाने लगी। घने लम्बे लटकते हुए गहरे काले केश पानी से सीधे हो गये हैं—उनसे पानी टपक रहा है, बादल से जैसे बूँदें टपक रही हो। आँखे मुँदी हुईं; परन्तु उन मुद्रित पद्मो पर दोनो भौंहे पानी मे भीग कर और भी काली शोभा से सुशोभित हैं। और वह ललाट—स्थिर, विस्तृत, लज्जा-भाव-विहीन, किसी अव्यक्त भाव से युक्त—गंड अभी भी उज्ज्वल, अधर अभी भी मधुमय, बन्धूक पुष्प को लजानेवाला। गोविन्दलाल की आँखो से आँसू टपकने लगे। कहा, "बलिहारी है! क्यो विधाता ने तुम्हे इतना रूप देकर भेजा था, रूप दिया था तो सुखी क्यो नहीं किया? इस तरह तुम क्यो चलीं?"

इस सुन्दरी के आत्मघात के लिए वे स्वयं मूल कारण हैं—यह बात सोचने पर उनकी छाती फटने लगी।

अगर रोहिणी मे जीवन है तो उसे बचाना होगा। पानी में डूबे हुए को किस तरह बचाते है, गोविन्दलाल यह जानते थे। पेट का पानी सहज ही निकाला जा सकता है। दो-चार दफे रोहिणी को उठा कर, बैठा कर, करवट लिवा कर, घुमा कर उन्होने पानी निकाला, परन्तु इससे साँस नहीं चली। वही मुश्किल काम है।

गोविन्दलाल जानते थे, मुमूर्षु की दोनो बाहे पकड़ कर उठाने पर भीतर का वायु-कोष फूलता है, उस समय रोगी का मुँह फूँका जाता है; इसके बाद उठाते हुए दोनो बाहे धीरे धीरे उतारी जाती है, उतारने पर वायुकोष संकुचित होता है। तब वह फूँक से चलाई हवा अपने आप निकल आती है। इससे कृत्रिम श्वास-प्रश्वास चलाया जाता है। इस तरह बार बार करते करते वायुकोष का काम अपने आप होने लगता है। कृत्रिम श्वास-प्रश्वास चलाते चलाते सहज श्वास-प्रश्वास अपने आप चलने लगता है।

रोहिणी के लिए ऐसा ही करना होगा। दोनो हाथो से दोनो बाहें उठाकर उसके मुँह मे फूँकना होगा। उस पके विम्बाफल को जीतनेवाला, अभी भी सुधा से परिपूर्ण, मदन-मद-उन्माद और हलाहल के आधार, मधुर लाल अधर पर अधर रख कर फूँकना होगा। क्या आफत है? कौन फूँकेगा?

गोविन्दलाल का सहायक एक उड़िया माली था। बगीचे के दूसरे नौकर इससे पहले घर चले गये थे। उन्होने माली से कहा, "मै इसके दोनो हाथ ऊपर उठाता हूँ, तू इसके मुँह मे फूँक।"

मुँह मे फूँकना! सर्वनाश! उस लाल अमृत भरे अधर पर माली के मुँह की फूँक! "यह मुझसे नही हो सकता, मालिक!"

माली से मालिक अगर शालिग्राम शिला चबाने के लिए कहते तो मालिक की खातिर माली चबा भी सकता था, लेकिन उस चाँद-मुँह के लाल होठो मे उस कटकी के मुँह की फूँक! माली को पसीना आने लगा। उसने खुल कर कहा, "यह मुझसे नहीं हो सकता मालिक!"

माली ने ठीक कहा था। माली उन देव-दुर्लभ होठो मे अगर एक दफा मुँह लगाकर फूँकता, इसके बाद अगर रोहिणी बच कर फिर वही होठ फुलाकर, जल का घड़ा लिये हुए, माली की तरफ देखकर घर जाती, तो उसे फुलवाड़ी का काम न करना होता। वह खंता, खुरपा, निरौनी, कैंची, फावड़ा वगैरह वारुणी के पानी मे फेंक कर मदरक की तरफ दौड़ लगाता, इसमे संदेह नहीं,—जान पड़ता है स्वर्ण रेखा के नीले जल मे डूब मरता। माली ने इतना सोचा था या नहीं, हम नही कह सकते, परन्तु माली फूँकने के लिए राज़ी नहीं हुआ।

लाचार गोविन्दलाल ने उससे कहा, "तो तू दोनो हाथ इस तरह धीरे-धीरे उठाता रह, मै फूँकता हूँ। इसके बाद धीरे-धीरे हाथ उतारना।" माली ने यह स्वीकार किया। उसने दोनो हाथ पकड़ कर

धीरे धीरे उठाया। गोविन्दलाल ने तब खिले हुए लाल कुसुम जैसे दोनो होठो को रख कर रोहिणी के मुँह मे फूँका।

उस समय भ्रमर एक डंडा लेकर बिल्ली को मारने जा रही थी, बिल्ली को मारने के वक्त वह डंडा बिल्ली को न लग कर भ्रमर के ही सर पर लगा।

माली ने रोहिणी की दोनो बाहें उतारीं, फिर उठाईं फिर गोविन्दलाल ने फूँका, फिर वैसा ही किया। बार बार वैसा ही करने लगे। दो-तीन घंटे तक करते रहे। रोहिणी की साँस चली। रोहिणी बची।

सत्रहवाँ परिच्छेद

रोहिणी का श्वास-प्रश्वास चलने लगा। गोविन्दलाल ने उसे दवा पिलाई। दवा बल बढ़ानेवाली थी—क्रमशः रोहिणी मे बल-संचार होने लगा। रोहिणी ने आँखे खोल कर देखा—सजे हुए सुन्दर घर मे मन्द-मन्द शीतल पवन झरोखे से आ रही है—एक तरफ स्फटिक के आधार पर स्निग्ध प्रदीप जल रहा है।—और एक तरफ हृदय के आधार पर जीवन-प्रदीप जल रहा है। इस तरफ रोहिणी गोविन्दलाल के हाथ की दी मृत-संजीवनी-सुरा पीती हुई मृत-संजीवित होने लगी—और दूसरी तरफ उनकी मृत-संजीवनी कथा कानो से पीती हुई मृत-संजीवित होने लगी—पहले साँस, फिर चेतन्त, फिर दृष्टि, फिर स्मृति, अंत मे बात निकलने लगी। रोहिणी ने कहा, "मै मर गई थी, मुझे किसने बचाया?" गोविन्दलाल ने कहा, "जो भी बचाये, तुमने जो रक्षा पाई है, यही बहुत है।"

रोहिणी ने कहा, "मुझे क्यो बचाया ? आपके साथ मेरी ऐसी कौन-सी दुश्मनी है, मृत्यु मे भी आप प्रतिवादी है ?

गो०—तुम मरोगी क्यो ?

रो०—मरने का क्या मुझे अधिकार नहीं ?

गो०—पाप मे किसी का अधिकार नहीं। आत्महत्या पाप है।

रो०—मै पाप-पुण्य नहीं जानती—मुझे किसी ने सिखलाया नहीं। मै पाप-पुण्य नहीं मानती—किस पाप से मुझे यह दंड मिला ? पाप न करने पर भी अगर यह दुख है तो पाप करने से इससे ज्यादा होगा ? मै मरूँगी ? इस दफा न हो तुम्हारी आँखों मे पड़ी थी, इसलिए तुमने बचा लिया, दोबारा तुम्हारी आँखो मे न पड़ूँ वह प्रयत्न करूँगी।

गोविन्दलाल बडे व्याकुल हुए; कहा, "तुम क्यो मरोगी ?"

"चिरकाल तक दंड दंड, पल पल, रात-दिन मरने की अपेक्षा एक दफा मरना अच्छा है।"

गो०—किस बात की इतनी तकलीफ है ?

रो०—रात-दिन भयकर प्यास लगी रहती है, दिल जल रहा है—सामने ही ठंडा पानी है, लेकिन इस जन्म मे वह पानी छू नहीं सकती, आशा भी नहीं।

गोविन्दलाल ने तब कहा, "अब इन सब बातो की जरूरत नही, चलो, तुम्हे घर छोड़ आवे।"

रोहिणी ने कहा, "नहीं, मै अकेली चली जाऊँगी।"

गोविन्दलाल समझे कि एतराज क्यो है। गोविन्दलाल ने और कुछ नहीं कहा। रोहिणी अकेली गई।

तब गोविन्दलाल उस एकान्त कमरे मे एकाएक गर्द से भरी फर्श पर लोटते हुए रोने लगे। फर्श मे मुँह छिपाकर बहते हुए आँसुओ से पुकारने लगे, हा नाथ! नाथ! तुम मेरी इस विपत्ति

में रक्षा करो। तुम बल नहीं दोगे तो किसके बल से मै इस विपत्ति से उद्धार पाऊँगा ? मै मरूँगा—भ्रमर मरेगी। तुम इस चित्त मे विराजमान रहना—मै तुम्हारे बल से आत्म-जय करूँगा।"

——

अठारहवाँ परिच्छेद

गोविन्दलाल घर लौट गये। भ्रमर ने पूछा, "आज इतनी रात तक बगीचे मे क्यों थे ?"

गो०—क्यो पूछ रही हो ? और क्या मै कभी नहीं रहता ?

भ्र०—रहते हो, लेकिन तुम्हारा मुँह देखने पर, तुम्हारा लहजा समझने पर मालूम होता है, आज कुछ हुआ है।

गो०—क्या हुआ ?

भ्र०—क्या हुआ है, यह तुम नहीं बतलाओगे, तो मै किस तरह समझूँगी ? मै क्या वहाँ थी ?

गो०—क्यो, मुँह देखकर वह बात कह नहीं सकतीं ?

भ्र०—मजाक रक्खो—बात, अच्छी बात नहीं यह मै मुँह देखकर कह सकती हूँ—मुझसे बतलाओ, मेरे प्राण बहुत व्याकुल हो रहे है।

कहते कहते भ्रमर की आँखो से आँसू टपकने लगे। गोविन्दलाल ने भ्रमर की आँखो के आँसू पोछ कर आदर करते हुए कहा, "एक दूसरे दिन बताऊँगा, भ्रमर, आज नहीं।"

भ्र०—आज नहीं क्यो ?

गो०—तुम इस समय बालिका हो, यह बात बालिका को सुननी नहीं चाहिए।

भ्र०—कल मैं बुड्ढी हो जाऊँगी ?

गो०—कल भी नहीं बतलाऊँगा—दो साल बाद बतलाऊँगा। अब और पूछो मत, भ्रमर। भ्रमर ने लम्बी साँस छोड़ी। कहा, "तो यही सही—दो साल बाद बतलाना। मेरी सुनने की बड़ी साध थी—परन्तु तुमने अगर न कहा, तो मैं सुनूँगी किस तरह ? मेरा मन न जाने कैसा हो रहा है ?"

न जाने कैसा एक भारी दुःख भौरा के मन के भीतर अँधेरा बढाने लगा। जैसे वसंत का आकाश—बहुत सुन्दर, बहुत नीला, बहुत उज्ज्वल होता है—कहीं भी कुछ नहीं—अकस्मात् एक बादल उठकर, चारो तरफ छाकर अँधेरा कर डालता है—भौरा को मालूम दिया, जैसे उसकी छाती के भीतर वैसा ही एक बादल—उमड़कर छा गया और चारो तरफ अँधेरा कर गया। भ्रमर की आँखों मे आँसू आने लगे। भ्रमर ने सोचा, "मैं अकारण रो रही हूँ—मैं बड़ी बदमाश हो गई हूँ—मेरे पति नाराज होंगे।"

अस्तु, भ्रमर रोती हुई बाहर निकल कर, एक किनारे बैठकर पैर फैलाकर, अन्नदा-मगल पढ़ने लगी। क्या अंड-बंड पढ़ा, यह हम नहीं कह सकते, परन्तु हृदय के भीतर से वह काला मेघ किसी तरह नहीं दूर हुआ।

उन्नीसवाँ परिच्छेद

गोविन्दलाल बाबू ताऊ जी के साथ जमींदारी की बातचीत मे लगे। बातचीत करते हुए किस गाँव की कैसी हालत है, पूछने लगे। कृष्णकान्त गोविन्दलाल का यह विषयानुराग देखकर ख़ुश

हुए, कहा, "तुम लोग अगर कुछ कुछ देखभाल करो तो वडा अच्छा हो। देखो, मै और कितने दिन हूँ ? तुम लोग अभी से सव देख-सुन न रक्खोगे, तो मेरे मरने पर कुछ समझ न पाओगे। देखो, मै वुड्ढा हूँ, और कहीं जा नहीं सकता। लेकिन विना तहकीकात के सव गॉव विगड जायँगे।"

गोविन्दलाल ने कहा, "आप भेजे तो मै जाने के लिए तैयार हूँ। मेरी भी इच्छा है, कुल गॉव एक दफा देख आऊँ।" कृष्णकान्त प्रसन्न हुए। कहा, "इससे मुझे वड़ा आनन्द है। फिलहाल वन्दरखाली मे कुछ विगाड है। नायव कह रहे है कि रिआया ने सत्याग्रह किया है, लगान नहीं देती। कहती है, हम लगान देते है, नायव वसूली की रसीद नहीं देते। तुम्हारी अगर इच्छा हो तो कहो, हम तुम्हे वहॉ भेजने का इन्तज़ाम करे।"

गोविन्दलाल सम्मत हुए, वे इसी लिए कृष्णकान्त के पास आये थे, उनकी यह भरी जवानी, मन की वृत्तियॉ उमडे हुए समुद्र की तरंग की तरह प्रवल है, रूप की प्यास वड़ी प्रखर। भ्रमर से वह तृष्णा निवारित नहीं हुई। निदाघ-नील-मेघमाला जैसी रोहिणी अपने रूप से इस चातक के लोचन-पथ पर आ चुकी थी—प्रथम वर्षा के मेघ-दर्शन से चचल मयूर की तरह गोविन्दलाल का मन रोहिणी का रूप देखकर नाच उठा था। गोविन्दलाल ने वह समझकर मन ही मन शपथ कर निश्चय किया, मरना है तो मरूँगा, लेकिन फिर भी भ्रमर की ऑखो मे अविश्वासी या कृतघ्न नही हूँगा। उन्होने मन ही मन निश्चय किया कि जमींदारी के काम मे मन लगाकर रोहिणी को भूलूँगा—दूसरी जगह जाने पर जरूर भूल सकूँगा। इस तरह मन ही मन संकल्प कर वह ताऊ जी के पास वैपयिक आलोचना कर रहे थे। बन्दर-खाली की वात सुनकर आग्रह के साथ वहॉ जाने के लिए सहमत होगये।

भ्रमर ने सुना, मझले बाबू देहात जायँगे। भ्रमर ने पकडा, मैं भी जाऊँगी। बड़ा रोना-धोना मचा। लेकिन भ्रमर की सास ने किसी तरह भी जाने नहीं दिया। नाव सजाकर, नौकरो से घिरे हुए, भ्रमर का मुँह चूम कर गोविन्दलाल दस दिन का रास्ता बन्दर-खाली चले।

भ्रमर पहले जमीन पर लेट कर रोई, इसके बाद उठ कर अन्नदा-मंगल फाड़ डाला,—पिजरे की चिड़िया उड़ा दी, खिलौने सब पानी मे फेक दिये, टब के पौधे काट डाले, भोजन का अन्न पकानेवाली के बदन पर फेंक दिया,—नौकरानी का जूड़ा पकड़ कर, घुमा कर उसे गिरा दिया—ननद से लड़ाई की—इस तरह अनेक प्रकार के दौरात्म्य करके लेटी। लेटते हुए चद्दर ओढ़ कर फिर रोने लगी। इधर अनुकूल हवा से चलती हुई गोविन्दलाल की नाव नदी की तरंगो को चीर रही थी।

बीसवाँ परिच्छेद

कुछ अच्छा नहीं लगता—भ्रमर अकेली है। भ्रमर ने बिस्तरा निकाल डाला—बड़ी गर्मी मालूम देती है। पलँग का पंखा खोल डाला—हवा बडी गर्म है, नौकरानियो को फूल लाने से मना किया—फूलो में बड़े कीडे है। ताश खेलना बद किया—सहेलियो के पूछने पर कहने लगी, ताश खेलने से सास जी नाराज होती है। सुई, डोरा, ऊल, पैटर्न सब एक एक करके टोले की लड़कियो को दे दिये। पूछने पर कहने लगी कि आँखे बहुत जलती है। कपड़े मैले क्यो है, किसी के पूछने पर धोबी को गालियाँ देती है, अथच

धुले कपड़ों से घर भरा हुआ है, सिर के बालो के साथ कंघी का सम्बन्ध रहित हो आया—सूखी घास की तरह बाल हवा मे फर-फर उड़ने लगे,—पूछने पर भ्रमर हँस कर बालो को हाथ से खीच कर जूड़े मे खोंस लेती है, बस यहीं तक। भोजन के समय भ्रमर ने रोज बहाना करना शुरू किया, "मै नहीं खाऊँगी, मुझे ज्वर आया है।" सास ने कविराज को दिखलाकर, पाचन और गोलियो की व्यवस्था करके खीरी पर भार दिया, "बहू को ये दवाये खिलाना"। बहू ने खीरी के हाथ से पाचन और बड़ियाँ छीनकर झरोखे से वाहर फेक दीं।

क्रमश· यहाँ तक बढ़ा-बढ़ी हुई कि खीरी को असह्य मालूम दिया, खीरी ने कहा, "अच्छा बहूरानी जी, किसके लिए तुम ऐसा करती हो? जिनके लिए तुमने खाना और सोना छोड़ दिया है, वे क्या तुम्हारी बात एक दिन के लिए भी सोचते है? तुम मरती हो रोती हुई, और वे, मुमकिन, हुक्के की नली मुँह मे लगाये, आँख मूँदे हुए रोहिणी का ध्यान कर रहे हों।"

भ्रमर ने खीरी के एक तमाचा कस दिया।

भ्रमर का हाथ बहुत चलता था। परन्तु रोती रोती डर कर बोली, "तेरी जो इच्छा होगी, वही बकेगी तो तू मेरे पास से उठ जा।" खीरी ने कहा, "तो क्या चपत-घूँसो से लोगो का मुँह बन्द हो जायगा? तुम नाराज होगी, इसलिए हम डर से कुछ नहीं कहते। लेकिन बिना कहे निस्तार भी नहीं। पाँची चांडालिन को बुलाकर पूछो—उस दिन उतनी रात को रोहिणी बाबू के बगीचे से आ रही थी या नहीं?"

चीरदा की किस्मत वुरी थी, इसीलिए ऐसी बात सुबह-सुबह भ्रमर से उसने कही। भ्रमर उठ कर खडी हुई और चीरदा को चपत पर चपत मारी, घूँसे पर घूँसा मारा, उसे ढकेल कर गिरा दिया, उसके बाल पकड़ कर खींचे। अंत में ख़ुद रोने लगी।

क्षीरदा बीच-बीच मे भ्रमर से एक चपत या एक झापड़ पा जाती थी। कभी गुस्सा नहीं करती थी, लेकिन आज कुछ ज्यादती हुई, आज उसे कुछ गुस्सा आया। उसने कहा, "लेकिन बहूरानी जी, हमे मार डालने से क्या होगा ?—तुम्हारे ही लिए हम कहती है। हम लोगो को बाते लेकर लोग तिल का ताड़ करते रहे, हमसे यह सहा नहीं जाता। अगर मेरी बात का विश्वास न हो, तो तुम पॉची को बुला कर पूछो।"

गुस्से से और दु ख से रोती हुई भ्रमर कहने लगी, "तुझे पूछना हो तो तू पूछ जाकर, मै क्या तेरी तरह छछूँदर हूँ जो अपने पति की बात पॉची चांडालिन से पूछूँ ? तू इतनी बड़ी बात मुझसे कहती है ? सास जी से मैं तुझे झाड़ू लगवाकर यहाँ से निकलवा दूँगी, तू मेरे सामने से दूर हो जा।"

तब सुबह का वक्त था। उत्तम, मध्यम प्रसाद पाकर क्षीरदा उर्फ खीरी गुस्से से गमगमाती हुई चली गई। इधर भ्रमर मुँह उठा कर, ऑखो मे ऑसू भरे हुए, हाथ जोड कर मन ही मन गोविन्द-लाल को पुकार कर कहने लगी, "हे गुरो! शिक्षक, धर्मज्ञ, मेरे एक मात्र सत्यस्वरूप! तुमने क्या उस दिन यही बात मुझसे छिपाई थी ?" उसके मन के भीतर जो मन है, हृदय मे छिपाया हुआ जो स्थान कभी कोई नहीं देख पाता—जहाँ अपने को धोका देना नहीं, वहाँ भ्रमर ने देखा, पति पर उसे अविश्वास नहीं। अविश्वास नहीं होता। भ्रमर ने केवल एक दफा मन मे सोचा, "वे अविश्वासी भी होगे, तो ऐसा क्या दुख है ? मेरे मरने पर ही सब चुक जायगा।" हिन्दू की लड़की मरना बड़ा सीधा समझती है।

——

इक्कीसवाँ परिच्छेद

अब खीरी नौकरानी ने सोचा कि यह बहुत बड़ा कलिकाल है—रत्ती भर की लड़की है, मेरी बात पर विश्वास नहीं करती। क्षीरदा के सरल अंतःकरण पर भ्रमर की गुस्सा-नाराज़गी का कुछ असर नहीं, वह भ्रमर का भला चाहती है, अमंगल नहीं; लेकिन भ्रमर ने जो अपने ठगे जाने की बात पर ध्यान नहीं दिया, यह उसके लिए असह्य हो गया। क्षीरदा तब अपनी चिकनी देह पर तेल लगाकर, रंगीन अँगौछे को कंधे पर डाल, बगल मे कलसी दबा कर वारुणी के घाट मे नहाने चली।

हरमणि महराजिन बाबुओं के मकान की एक भोजनवाली थी, वह उस वक्त वारुणी के घाट से नहा कर लौट रही थी। पहले उससे मुलाकात हुई। हरमणि को देखकर क्षीरदा अपनी बात कहने लगी, "कहते है, जिनके लिए चोरी करे, वही कहते है चोर—अब बड़े आदमियों का काम और नहीं किया जायगा—कब किसका मिजाज कैसा रहता है, इसका ठिकाना नहीं।"

ज़रा झगड़े की बू पाकर, दाहने हाथ की निचोड़ी हुई धोती बाये हाथ मे लेकर हरमणि ने पूछा, "क्यों री क्षीरदा! माजरा क्या है?"

क्षीरदा ने तब अपने मन का बोझ उतारा, कहा, "देखो तो महराजिन, टोले की गाजमारी जुवन्टा औरते बाबू के बगीचे मे सैर करने जायँगी—हम नौकर-चाकर—क्या हम मालकिन से कह नहीं सकतीं?"

हर०—यह कैसी बात है री! टोले की लड़कियों मे फिर कौन बाबू के बगीचे मे सैर करने गई?

खी०—गई और कौन? वही दईमारी रोहिणी।

हर०—जले मुँह ! रोहिणी की ऐसी दशा कितने दिन से हुइ ? किस बाबू के बगीचे मे री खीरी ?

चीरदा ने मझले बाबू का नाम लिया। तब दोनो एक दूसरी की तरफ देखकर, जरा रस की मुसकुराहट लेकर, जिसे जिस तरफ जाना था, उस तरफ गईं। कुछ दूर जाने पर ही चीरदा के साथ पडोस की राम की माँ से मुलाकात हुई। चीरदा ने उसे भी हँसी के फंदे से फाँस कर, खड़ी कर, रोहिणी के अत्याचार का परिचय दिया। फिर दोनो स्त्रियाँ हँसती हुई घूम-फिर कर देखती हुई अपने रास्ते चली गईं।

इस तरह चीरदा ने रास्ते मे राम की माँ, श्याम की माँ, हारी, तारी, पारी, जिसे भी देखा, उसी को अपने मर्म की पीड़ा का परिचय दिया और अत मे स्वस्थ शरीर से, प्रफुल्ल हृदय से वारुणी की स्फटिक-तुल्य वारि-राशि मे नहाने लगी। इधर हरमणि, राम की माँ, श्याम की माँ, हारी, तारी, पारी आदि ने जहाँ जिसे देखा, उसे वहीं पकड़ कर सुना दिया कि रोहिणी अभागी मझले बाबू के बगीचे मे सैर करने गई थी। एक मे शून्य जोडो दस हुए, दस मे शून्य जोड़ो सौ हुए, सौ मे शून्य जोड़ो हजार हुए, जैसे सूर्य की किरण तेज होती है। खीरी ने पहले पहल भ्रमर से रोहिणी की बात उठाई थी। सूर्य के अस्त गमन से पहले घर घर मे घोषित हो गया कि रोहिणी गोविन्दलाल की कृपा-पात्री है। केवल बगीचे की बात, अपरिमेय प्रणय की बातो, अपरिमेय अलकारो की बातो और कितनी बातो मे ही ढल गई। यहाँ मै—हे रटना-कौशलमयी कलक-कलित-कठ-कुलकामिनियो !—अधम-सत्य-शासित पुरुष-लेखक ! आप लोगो से सविस्तर कह कर बढ़ाचढ़ी नहीं करना चाहता।

क्रमशः भ्रमर के पास खबर आने लगी। पहले विनोदिनी ने आकर कहा, "सत्य क्या है री ?" भ्रमर कुछ सूखे मुँह से, टूटे हृदय से बोली, "क्या सत्य है, बीबी ?" बीबी ने तब पहले-पहल

धनुष जैसी दोनो भौहो को कुछ समेट कर कटाक्ष से बिजली गिराती हुई, अपने लड़के को गोद पर चढ़ा कर कहा, "पूछती हूँ, रोहिणी-वाली बात ?"

भ्रमर ने विनोदिनी से कुछ न कहकर उसके लड़के को खींच कर किसी बालिका-सुलभ कौशल से उसे रुलाया। विनोदिनी बालक को दूध पिलाती हुई अपने स्थान को गई।

विनोदिनी के बाद सुरधुनी ने आकर कहा, "कहती हूँ मझली बहू, मझले बाबू को कोई दवा पिलाओ। हजार हो, तुम गोरी नहीं हो, मर्द का मन तो सिर्फ बातो से मिलता नहीं, कुछ रूप-गुण भी चाहिए। सो भई, रोहिणी की कैसी अक्ल है, कौन जाने ?"

भ्रमर ने कहा, "रोहिणी की फिर अक्ल क्या है ?"

सुरधुनी ने मत्थे पर हाथ मार कर कहा, "अरी किस्मत! इतने आदमियो ने सुना है—सिर्फ तूने ही नहीं सुना ? मझले बाबू ने रोहिणी को सात हजार रुपये के जेवर दिये है।"

भ्रमर के हाड़ तक जल गये। मन ही मन सुरधुनी को यम के हाथो सौपा। खुल कर एक खिलौने का सर मरोड़ कर तोड़ती हुई, सुरधुनी से कहा, 'यह मै जानती हूँ, खाता देखा है। तेरे नाम पर चौदह हजार रुपये के जेवर लिखे है।"

विनोदिनी और सुरधुनी के बाद रामी, वामी, श्यामी, कामिनी, भामिनी, शारदा, प्रमदा, सुखदा, वरदा, विमला, शीतला, निर्मला, मधु, विधु, निधु, तारिणी, निस्तारिणी, दीन-तारिणी, सुरबाला, गिरिबाला, व्रजबाला, शैलबाला आदि अनेकों ने एक एक, दो दो, तीन तीन करके दुःखिनी, विरह-कातरा बालिका से आ-आकर कहा, कि तुम्हारे स्वामी रोहिणी से फँसे है। कोई युवती, कोई प्रौढ़ा, कोई बुड्ढी, कोई बालिका, सभी ने आकर कहा, कितना आश्चर्य है! मझले बाबू का रूप देखकर कौन नहीं मोहती ? रोहिणी का रूप देखकर वे भी क्यो न मोहेगे ? किसी ने आदर कर, किसी ने

चिढ़ा कर, किसी ने रस से, किसी ने गुस्से से, किसी ने सुख से, किसी ने दुःख से, किसी ने हँसकर, किसी ने रोकर भ्रमर से कहा, "भ्रमर, तुम्हारी किस्मत फूट गई।"

गाँव मे भ्रमर सुखी थी। उसका सुख देखकर सब द्वेष करती थीं—काली-कलूटी को इतना सुख, अनन्त ऐश्वर्य,—देव-दुर्लभ स्वामी—लोक मे निष्कलंक यश—अपराजिता का पद्म जैसा आदर? इस पर उसकी चमेली की खुशबू? गाँव की औरतो से इतना नहीं सहा जाता था। इसी लिए गुटो मे, दलो मे, कोई गोद मे बच्चा लेकर, कोई बहन को साथ लेकर, कोई बाल बाँध कर, कोई वेणी बाँधती हुई, कोई खुले बालो से, संवाद देने के लिए आई—"भ्रमर तुम्हारा सुख गया।" किसी के मन मे भी नहीं आया कि भ्रमर पति-विरह-विधुरा है, निर्दोष दुःखिनी बालिका है।

भ्रमर अधिक और नहीं सह सकी। दरवाज़ा बंद कर फ़र्श पर लोटती हुई, धूलि-धूसर होकर रोने लगी। मन ही मन कहा, "हे सदेह-भंजन! हे प्राणाधिक! तुम्ही मेरे संदेह, तुम्ही मेरे विश्वास हो। आज किससे पूछूँ? मुझे क्या संदेह हुआ है? लोग सभी कह रहे है। सत्य न होगा तो क्यो कहेगे? तुम यहाँ नहीं, आज मेरा सदेह कौन दूर करेगा? मेरा संदेह दूर नहीं हुआ—तो मै मरती क्यों नहीं? यह सदेह लेकर क्या बचा जाता है—मै मरती क्यो नही? लौट कर, प्राणेश्वर मुझे गालियाँ न देना कि भौंरा मुझसे कहे बिना मर गई।"

बाईसवाँ परिच्छेद

इस वक्त भ्रमर को ज्वाला है, रोहिणी को भी वही ज्वाला है, जब कि बात फैल गई है तो रोहिणी के कानो मे भी क्यो नहीं

रोहिणी इस बात की ओर कान न देकर कहने लगी "आदमी जितनी दूर तक कहते है, उतनी दूर तक नहीं। लोग कहते है, मुझे सात हजार रुपये के गहने मिले है। लेकिन सिर्फ तीन हजार रुपये के गहने और यह साड़ी मिली है। इसलिए तुम्हे दिखाने आई हूँ। सात हजार रुपये लोग क्यो कहते है?"

यह कह कर रोहिणी ने गठरी खोल कर बनारसी साड़ी और पानी चढे गहने भ्रमर को दिखाये। भ्रमर ने लात मार कर गहनो को चारो तरफ फैला दिया। रोहिणी ने कहा, "सोना लात से नहीं छुआ जाता।"

यह कह कर रोहिणी ने चुपचाप पानी-चढ़े गहने एक एक चुन कर फिर गठरी बाँधी, गठरी बाँध कर चुपचाप वहाँ से बाहर निकल गई।

तेईसवाँ परिच्छेद

रात पार होते न होते भ्रमर पति को पत्र लिखने बैठी। लिखना-पढ़ना गोविन्दलाल ने सिखलाया था, परन्तु भ्रमर लिखने-पढ़ने मे उतनी मजबूत नहीं हुई थी, फूलो मे, खिलौनो मे, चिड़ियो मे, पति मे भ्रमर का मन था, लिखने-पढने या घर के काम मे उतना नहीं। कागज लेकर लिखने के लिए बैठी, पर एक दफा पोछती, एक दफा काटती, एक दफा कागज बदल कर फिर पोछती, फिर काटती। अत मे डाल रक्खा। दो-तीन दिन मे भी एक पत्र समाप्त नहीं हुआ था, परन्तु आज वैसा कुछ नहीं हुआ। टेढ़ी, तिरछी लकीरो से जो कुछ भी कलम की नोक से निकला, आज वही भ्रमर को मजूर हुआ। "म" जितने आये "स" की तरह के हुए—"स" "म" की तरह

के—"फ" "क" की तरह "क" "फ" की तरह के "प" "व" की तरह के, छोटी की जगह बड़ी मात्रा, बड़ी की जगह छोटी, युक्ताक्षर अलग अलग, किसी अक्षर का बिलकुल लोप—भ्रमर ने कुछ खयाल नहीं किया। भ्रमर ने आज घंटे भर में लम्बा पत्र पति को लिख डाला। कट-कुट न थी, ऐसा नहीं। हम पत्र का कुछ परिचय देते है।

भ्रमर लिख रही है—"सेविका श्री भौरा" (इसके बाद "भौरा" काट कर "भ्रमर" बना दिया) "दास्या:" (पहले दास्मा लिखा, फिर काट कर दास्य लिखा—उसे काट कर "दास्यो." लिखा—"दास्या:" नहीं बन पड़ा) "प्रणामा·" ("प्र" लिखते हुए पहले "व्र" लिखा, इसके बाद "व्र" बनाया, अंत मे प्र) "निवेदनञ्च" (पहले "निवेदनच" लिखा, इसके बाद "निवेदनञ्च") "विशेप" (विशेष: नहीं बन पड़ा)।

खत लिखने की यह प्रणाली रही। जो कुछ लिखा था, उसका वर्ण शुद्ध करके, भाषा के संशोधन के साथ हम नीचे लिख रहे है—

"उस दिन रात को बगीचे मे तुम्हे देर क्यो हुई थी, यह मुझ से खोल कर तुमने नहीं कहा, दो साल के बाद कहूँगा कहा था, परन्तु मैंने भाग्य-दोप से पहले ही सुना। सुना क्यो, देखा भी। तुमने रोहिणी को जो गहने दिये है, उसने खुद मुझे दिखाये हैं।

"जान पड़ता है, तुम मन मे जानते हो कि तुम पर मेरी अचल भक्ति है—तुम पर मेरा अनंत विश्वास है। मै भी ऐसा ही जानती थी; परन्तु अब वैसी बात नहीं। जितने दिन तक तुम भक्ति के योग्य हो, उतने ही दिन तक मेरी भक्ति है। जितने दिन तक तुम विश्वासी हो, उतने ही दिन तक मेरा विश्वास है। अब तुम पर मेरी भक्ति नहीं, विश्वास भी नहीं। तुम्हारे दर्शन से अब मुझे सुख नहीं। तुम जब घर आओगे, मुझे अनुग्रह करके खबर देना—मै रो-पीट कर हो या जिस तरह हो, नैहर चली जाऊँगी।"

गोविन्दलाल को यथासमय पत्र मिला। उनके सर पर वज्र गिरा। सिर्फ दस्तखत से और वर्णों की अशुद्धि देखकर उन्हे विश्वास हो गया कि यह पत्र भ्रमर का लिखा हुआ है। फिर भी मन मे बहुत बातो का उन्होने संदेह किया, भ्रमर उन्हे ऐसा पत्र लिख सकती है, यह कभी उन्होने विश्वास नहीं किया।

उसी डाक से और भी कई पत्र आ गये। गोविन्दलाल ने पहले भ्रमर का ही पत्र खोला था? पढ़ कर स्तम्भित की तरह बहुत देर तक निश्चेष्ट रहे, इसके बाद दूसरे पत्र अनमने होकर पढ़ने लगे उनमे ब्रह्मानन्द घोष का एक पत्र था।

कविता-प्रिय ब्रह्मानन्द ने लिखा है—

"भाई जी! राजा राजा मे लडाई होती है—साधारण की जान जाती है। बहू जी तुम्हारे ऊपर सब तरह का अत्याचार कर सकती है। परन्तु हम दुखी प्राणी है, हम पर यह अत्याचार क्यो? उन्होने यह बात फैलाई है कि तुमने रोहिणी को सात हजार रुपये के गहने दिये है। और भी कितनी ओछी बाते फैली है, तुम्हे लिखते लज्जा लगती है—कुछ हो, तुमसे मेरी फरियाद है—तुम इसका यथोचित प्रबन्ध करो। नहीं तो मै यहाँ का रहना छोड दूँगा। इति।"

गोविन्दलाल और विस्मित हुए। भ्रमर ने बात फैलाई है? मर्म कुछ समझ न पाकर गोविन्दलाल ने उसी दिन हुक्म जारी कर दिया कि यहाँ की जलवायु मेरे लिए असह्य हो रही है, मै कल ही घर जा रहा हूँ, नाव तैयार करो।

दूसरे दिन नाव पर चढ़ कर उतरे मन से गोविन्दलाल ने घर की यात्रा की।

चौबीसवाँ परिच्छेद

जिसे प्यार करो, उसे आँखो की आड़ न करो। अगर प्रेम का बंधन दृढ़ रखना चाहते हो, तो डोर छोटी करो। वांछित को आँखो पर रक्खो; अदर्शन से कितना विषमय फल फलता है! जिसे विदा देते वक्त कितना रोये हो, सोचा है, शायद उसे छोड़ने पर दिन नहीं कटेगा; कुछ साल बाद जब फिर मुलाकात हुई है, तब सिर्फ तुमने पूछा है,—"अच्छे तो हो ?" शायद उसने घूम कर बात नहीं की—कोई बात ही नहीं हुई—आन्तरिक विच्छेद हो गया। शायद उसने मान कर फिर मुलाकात ही नहीं की। एक दफ़ा आँख की ओट होने पर ही, जो कुछ था, वह फिर नहीं रहा। जो कुछ गया, वह फिर नहीं आया। जो कुछ टूटा, वह फिर नहीं जुड़ा। मुक्त वेणी के बाद युक्त वेणी कहाँ देखी।

भ्रमर ने गोविन्दलाल को विदेश जाने देकर अच्छा नहीं किया। इस समय दोनों एक जगह रहते तो मन में मलिनता शायद न पैदा होती, वाचनिक विवाद से असली बात ज़ाहिर हो जाती, भ्रमर को इतना भ्रम न होता, इतना ग़ुस्सा न आता, ग़ुस्से से यह सर्वनाश न होता। गोविन्दलाल स्वदेश को चले, तो नायब ने कृष्णकान्त के पास एक इत्तला भेज दी कि मझले बाबू आज सुबह घर को रवाना हो रहे है। वह खत डाक से आया। नाव से डाक पहले आती है। गोविन्दलाल के गाँव पहुँचने के चार-पाँच दिन पहले कृष्णकान्त के पास नायब का खत आया। भ्रमर ने सुना, पति आ रहे है। भ्रमर उसी वक्त फिर खत लिखने बैठी। तब चार-पाँच काग़ज स्याही से भर कर फाड़ डाले, दो-चार घंटे मे एक पत्र लिखकर तैयार किया। इस पत्र मे माता को लिखा, "मेरी तबीअत बहुत नासाज़ है, तुम लोग अगर एक दफ़ा मुझे ले जाओ तो [illegible] लौटूँगी। देर न [illegible], पीड़ा बढ़ने

पर फिर अच्छी न हूँगी। हो सके तो कल ही आदमी भेजना। यहाँ पीडा की बात कहना मत।" यह पत्र लिख कर एकान्त मे खीरी नौकरानी से आदमी ठीक कर भ्रमर ने नैहर भेज दिया।

अगर माँ न होकर कोई और होती, तो भ्रमर का पत्र पढ़कर ही समझ लेती कि इसके भीतर कुछ धोखा है। परन्तु माँ लडकी की पीडा की बात सुन कर एक बार ही व्याकुल हो गई। भ्रमर की सास को एक लाख गालियाँ सुना कर, पति को भी कुछ भला-बुरा कहा, और रो-धोकर निश्चय किया कि अगले दिन पालकी और कहार लेकर नौकर-नौकरानियाँ भ्रमर को लेने जायँगी, भ्रमर के पिता ने कृष्णकान्त को चिट्ठी लिखी। चालाकी से भ्रमर की पीडा का कोई उल्लेख न कर उन्होने लिखा, "भ्रमर की माता की तबीअत बहुत खराब है, भ्रमर को एक दफ़ा देखने के लिए भेज दीजिए।" दास-दासियो को वैसी ही सीख दी। कृष्णकान्त बड़ी विपत्ति मे पडे।

इधर गोविन्दलाल आ रहे है, इस वक्त भ्रमर को नैहर भेजना उचित नहीं। इधर भ्रमर की माता पीड़ित है, न भेजने पर भी नहीं बनता। कुल बाते सोच कर चार रोज़ के करार पर भ्रमर को भेज दिया। चौथे रोज गोविन्दलाल आ पहुँचे। सुना कि भ्रमर पिता के यहाँ गई है, आज उसे बुलाने के लिए पालकी भेजी जायगी। गोविन्दलाल सब कुछ समझ गये। मन ही मन बडा अभिमान हुआ, मन ही मन सोचा, "इतना अविश्वास? बिना समझे, बिना पूछे मुझे छोड़ कर चली गई? मै अब उस भ्रमर का मुँह नही देखूँगा। जिसके भ्रमर नहीं, क्या वह जी ही नहीं रहा?"

यह सोच कर गोविन्दलाल ने भ्रमर को बुलाने के लिए आदमी भेजने से माँ को मना किया। क्यो मना किया—इसका यहाँ कुछ

चौबीसवाँ परिच्छेद

जिसे प्यार करो, उसे आँखो की आड़ न करो। अगर प्रेम का बधन दृढ़ रखना चाहते हो, तो डोर छोटी करो। वांछित को आँखो पर रक्खो; अदर्शन से कितना विपमय फल फलता है। जिसे बिदा देते वक्त कितना रोये हो, सोचा है, शायद उसे छोड़ने पर दिन नहीं कटेगा, कुछ साल बाद जब फिर मुलाकात हुई है, तब सिर्फ तुमने पूछा है,—"अच्छे तो हो ?" शायद उसने घूम कर बात नहीं की—कोई बात ही नहीं हुई—आन्तरिक विच्छेद हो गया। शायद उसने मान कर फिर मुलाकात ही नही की। एक दफा आँख की ओट होने पर ही, जो कुछ था, वह फिर नहीं रहा। जो कुछ गया, वह फिर नहीं आया। जो कुछ टूटा, वह फिर नही जुड़ा। मुक्त वेणी के बाद युक्त वेणी कहाँ देखी।

भ्रमर ने गोविन्दलाल को विदेश जाने देकर अच्छा नहीं किया। इस समय दोनों एक जगह रहते तो मन मे मलिनता शायद न पैदा होती, वाचनिक विवाद से असली बात ज़ाहिर हो जाती, भ्रमर को इतना भ्रम न होता, इतना ग़ुस्सा न आता, ग़ुस्से से यह सर्वनाश न होता। गोविन्दलाल स्वदेश को चले, तो नायब ने कृष्णकान्त के पास एक इत्तला भेज दी कि मझले बाबू आज सुबह घर को रवाना हो रहे हैं। वह खत डाक से आया। नाव से डाक पहले आती है। गोविन्दलाल के गाँव पहुँचने के चार-पाँच दिन पहले कृष्णकान्त के पास नायब का खत आया। भ्रमर ने सुना, पति आ रहे है। भ्रमर उसी वक्त फिर खत लिखने बैठी। तब चार-पाँच कागज़ स्याही से भर कर फाड़ डाले, दो-चार घंटे मे एक पत्र लिखकर तैयार किया। इस पत्र मे माता को लिखा, "मेरी तबीअत बहुत नासाज है, तुम लोग अगर एक दफा मुझे ले जाओ तो अच्छी होकर लौटूँगी। देर न करना, पीड़ा बढ़ने

नहीं। गोविन्दलाल ने सोचा, अगर भ्रमर को फ़िलहाल भूलना होगा, तो रोहिणी की बात ही सोचूँ—नहीं तो यह दुख भुलाया नहीं जायगा। बडे से बडे चिकित्सक छोटे से रोगो के उपशम के लिए उत्कट विष के प्रयोग मे प्रवृत्त होते है। गोविन्दलाल अपनी इच्छा से पहले ही अपने अनिष्ट-साधन मे प्रवृत्त हुए।

रोहिणी की बात पहले केवल स्मृति थी, बाद को दुख मे परिणत हुई, दुख से वासना मे, गोविन्दलाल वारुणी के तट पर फूलो के पेडों से घिरे मंडप मे बैठकर उस वासना के लिए अनुताप कर रहे थे। वर्षाकाल था। आकाश मेघो से घिरा हुआ। बादल घिरे हुए—पानी कभी कभी जोर-शोर से गिराते हुए—कभी मृदु मधुर होते हुए। लेकिन वृष्टि का विराम नहीं। शाम पार होने को है, परन्तु प्राय: हुई रात का अँधेरा, फिर बादल का अंधकार, वारुणी का घाट साफ नहीं दिखलाई पड़ता। गोविन्दलाल ने अस्पष्टरूप से देखा कि एक स्त्री उतर रही है। रोहिणी का वह सीढ़ियो से उतरना गोविन्दलाल को याद आया। वारुणी का घाट पिछलहर होगया है—कहीं पैर फिसल जाय, तो औरत पानी मे गिरकर विपत्ति मे न पड़े, यह सोचकर गोविन्दलाल कुछ हड़बड़ाये। पुष्प-मंडप को पकड़कर कहा, "तुम कौन हो जी! आज घाट मे न उतरना—बड़ा पिछलहर है, गिर जाओगी।"

औरत उनकी बात साफ़ समझ गई थी या नहीं, मै नहीं कह सकता। पानी बरस रहा था—शायद बूँदो की आवाज से वह अच्छी तरह सुन नहीं पाई। उसने बगल का घड़ा घाट पर उतारा। फिर सीढ़ियाँ चढने लगी। धीरे धीरे गोविन्दलाल के बगीचे की तरफ़ चली। बगीचे का दरवाजा खोल कर भीतर गई। गोविन्दलाल के पास मंडप के अन्दर जाकर खड़ी हुई। गोविन्दलाल ने देखा, सामने रोहिणी है।

गोविन्दलाल ने पूछा,—"भीगती हुई यहाँ क्यो, रोहिणी?"

भी खुलासा नहीं किया गया। उनकी सम्मति वैसी होने पर कृष्णकान्त ने बहू को लाने के लिए फिर कोई उद्योग नहीं किया।

पच्चीसवाँ परिच्छेद

इस तरह चार रोज बीते। भ्रमर को कोई लेने नहीं आया। भ्रमर भी नहीं आई। गोविन्दलाल ने सोचा, भ्रमर की स्पर्धा बढ़ गई है, उसे कुछ रुलाना है। सोचा, भ्रमर ने बड़ा अविचार किया है, कुछ रुलाऊँगा। एक दफा खाली घर देखकर ख़ुद भी कुछ रोये। भ्रमर का अविश्वास सोचकर एक एक दफा कुछ सिसकियाँ लीं। भ्रमर को नाराजगी है, यह सोचकर रुलाई आई। फिर आँसू पोछ कर नाराज हुए। नाराज होकर भ्रमर को भूलने की कोशिश की। भूलने की शक्ति न थी; सुख जाता है, स्मृति नहीं जाती, क्षत अच्छा हो जाता है, दाग अच्छा नही होता; आदमी जाता है, नाम रहता है।

अंत मे दुर्बुद्धि आई, गोविन्दलाल ने सोचा, भ्रमर को भूलने का सबसे अच्छा तरीका है, रोहिणी की चिंता। रोहिणी की अलौकिक रूप-प्रभा एक दिन के लिए भी गोविन्दलाल के हृदय को नही छोड़ी। गोविन्दलाल बलात् उसे स्थान नहीं देते थे, मगर वह छोड़ती नहीं थी। उपन्यास मे कहा जाता है किसी घर मे भूतो का दौरात्म्य होता है, भूत दिन-रात झाँकते रहते है, परन्तु ओझा उसे खदेड़ देते है। रोहिणी प्रेतिनी उसी तरह दिन-रात गोविन्दलाल के हृदय-मंदिर मे झाँकती रहती है, गोविन्दलाल उसे खदेड़ देते है। जैसे पानी के नीचे चन्द्र-सूर्य की छाया हो, चन्द्र-सूर्य नहीं; उसी तरह गोविन्दलाल के हृदय मे रोहिणी की छाया है, रोहिणी

नहीं। गोविन्दलाल ने सोचा, अगर भ्रमर को फ़िलहाल भूलना होगा, तो रोहिणी की बात ही सोचूँ—नहीं तो यह दुख भुलाया नहीं जायगा। बड़े से बड़े चिकित्सक छोटे से रोगों के उपशम के लिए उत्कट विष के प्रयोग मे प्रवृत्त होते है। गोविन्दलाल अपनी इच्छा से पहले ही अपने अनिष्ट-साधन मे प्रवृत्त हुए।

रोहिणी की बात पहले केवल स्मृति थी, बाद को दुःख मे परिणत हुई, दुख से वासना मे, गोविन्दलाल वारुणी के तट पर फूलो के पेडों से घिरे मंडप मे बैठकर उस वासना के लिए अनुताप कर रहे थे। वर्षाकाल था। आकाश मेघो से घिरा हुआ। बादल घिरे हुए—पानी कभी कभी ज़ोर-शोर से गिराते हुए—कभी मृदु मधुर होते हुए। लेकिन वृष्टि का विराम नहीं। शाम पार होने को है, परन्तु प्राय हुई रात का अँधेरा, फिर बादल का अंधकार, वारुणी का घाट साफ़ नहीं दिखलाई पड़ता। गोविन्दलाल ने अस्पष्टरूप से देखा कि एक स्त्री उतर रही है। रोहिणी का वह सीढ़ियो से उतरना गोविन्दलाल को याद आया। वारुणी का घाट पिछलहर होगया है—कहीं पैर फिसल जाय, तो औरत पानी मे गिरकर विपत्ति मे न पडे, यह सोचकर गोविन्दलाल कुछ हड़बड़ाये। पुष्प-मडप को पकड़कर कहा, "तुम कौन हो जी! आज घाट मे न उतरना—बड़ा पिछलहर है, गिर जाओगी।"

औरत उनकी बात साफ़ समझ गई थी या नहीं, मै नही कह सकता। पानी बरस रहा था—शायद बूँदो की आवाज से वह अच्छी तरह सुन नहीं पाई। उसने बगल का घड़ा घाट पर उतारा। फिर सीढियाँ चढने लगी। धीरे धीरे गोविन्दलाल के बगीचे की तरफ़ चली। बगीचे का दरवाजा खोल कर भीतर गई। गोविन्दलाल के पास मंडप के अन्दर जाकर खड़ी हुई। गोविन्दलाल ने देखा, सामने रोहिणी है।

गोविन्दलाल ने पूछा,—"भीगती हुई यहाँ क्यो, रोहिणी?"

कहा, "महाशय, जल्दी दवा लेकर चलिए, ताऊ जी की हालत बहुत अच्छी नहीं मालूम देती।" वैद्य हड़बड़ाये हुए बड़ियो का एक भेद लेकर उनके साथ दौड़े—कृष्णकान्त के कमरे मे गोविन्दलाल वैद्य के साथ हाज़िर हुए, कृष्णकान्त कुछ डरे, वैद्य ने नाड़ी देखी, कृष्णकान्त ने पूछा, "क्या वैसी कोई शंका हो रही है?" वैद्य ने कहा, "मनुष्य के शरीर मे शंका कब नहीं रहती?"

कृष्णकान्त समझे। पूछा, "मीयाद कब तक है?"

वैद्य ने कहा, "दवा खिलाकर कह सकूँगा।" वैद्य ने दवा घोट कर तैयार की, कृष्णकान्त के पास पहुँचे, कृष्णकान्त ने खरल हाथ मे लेकर एक दफा सर से छुआया इसके बाद कुल दवा पीकदान मे उलट दी।

वैद्य का चेहरा उतर गया। कृष्णकान्त ने देखकर कहा, "उदास न हूजिएगा। दवा खाकर बचने की उम्र मेरी नहीं। दवा की अपेक्षा ईश्वर का नाम लेने से मेरा अधिक उपकार है। तुम लोग ईश्वर का नाम लो, मै सुनूँ।"

कृष्णकान्त के सिवाय किसी ने ईश्वर का नाम नहीं लिया। परन्तु लोग घबराये, डरे और ताज्जुब मे आये। कृष्णकान्त अकेले निडर है। कृष्णकान्त ने गोविन्दलाल से कहा, "मेरे सिरहाने दराज की कुंजी है, निकालो।" गोविन्दलाल ने तकिये के नीचे से कुंजी निकाली।

कृष्णकान्त ने कहा, "दराज खोल कर मेरा विल निकालो।"

गोविन्दलाल ने दराज़ खोल कर विल निकाला।

कृष्णकान्त ने कहा, "मेरे कर्मचारियों, मुहर्रिरो और गॉव के दस भले आदमियो को बुलाओ।"

उसी वक्त़ नायब, मुहर्रिर, गुमाश्ते, कारकुन,—चट्टोपाध्याय, मुखोपाध्याय, वन्द्योपाध्याय, भट्टाचार्य, घोष, बोस, मित्र, दत्त वगैरह से घर भर गया।

कृष्णकान्त ने एक मुहर्रिर को आज्ञा दी, "मेरा विल पढ़ो।"

मुहर्रिर ने पढ़ कर समाप्त किया।

कृष्णकान्त ने कहा, "यह विल फाड़ डालना होगा। नया विल लिखो।"

मुहर्रिर ने पूछा, "किस तरह लिखना होगा ?"

कृष्णकान्त ने कहा, "जैसा है, सब वैसा ही, सिर्फ"—

"सिर्फ, क्या ?"

"सिर्फ गोविन्दलाल का नाम काट कर उसकी जगह मेरी भ्रातुष्पुत्रवधू भ्रमर का नाम लिखो। भ्रमर के न रहने पर गोविन्दलाल वह आधा हिस्सा पायेगा, लिखो।"

सब आदमी निस्तब्ध रह गये। किसी ने कोई बात नहीं कही। मुहर्रिर ने गोविन्दलाल के मुँह की तरफ देखा, गोविन्दलाल ने इशारा किया, "लिखो।"

मुहर्रिर लिखने लगा। लिखना खतम होने पर कृष्णकान्त ने दस्तखत किये। गवाहो ने स्वाक्षर किये। गोविन्दलाल ने अपनी तरफ से उपयाचक लेकर, विल लेकर उसमे गवाह के रूप स्वाक्षर किया।

विल मे गोविन्दलाल की एक कौड़ी भी नहीं—भ्रमर का आधा हिस्सा।

उस रात राम नाम करते हुए तुलसी-मंच के नीचे कृष्णकान्त का परलोक-गमन हुआ।

सत्ताईसवाँ परिच्छेद

कृष्णकान्त की मृत्यु के सवाद से देश के आदमी क्षोभ प्रकट करने लगे। किसी ने कहा, "एक इन्द्रपात हो गया" किसी ने कहा,

"एक दिग्पाल मरा" किसी ने कहा, "पर्वत का शृङ्ग टूट गया"। कृष्णकान्त विषयी आदमी थे, परन्तु सच्चे थे और दरिद्र, ब्राह्मण, पण्डितो को यथेष्ट दान दिया करते थे, इसलिए बहुतो को उनके न रहने पर शोक हुआ।

सबसे ज्यादा भ्रमर को। अब लाचारी दरजा भ्रमर को लाना पड़ा। कृष्णकान्त की मृत्यु के दूसरे ही दिन गोविन्दलाल की माता ने अपनी तरफ से पुत्र-वधू को बुला भेजा। भ्रमर ने आकर कृष्ण-कान्त के लिए रोना शुरू किया। गोविन्दलाल के साथ भ्रमर की पहली मुलाक़ात मे रोहिणी की बात पर किसी महाप्रलय के घटने की सम्भावना थी या नहीं हम ठीक तौर से नही कह सकते; परन्तु कृष्णकान्त के शोक मे वे बाते इस वक्त दब गई। भ्रमर के साथ गोविन्दलाल की जब पहली मुलाकात हुई, तब भ्रमर ताऊ-ससुर के लिए रो रही थी, गोविन्दलाल को देखकर और भी रोने लगी।

अस्तु, जिस बडे हंगामा की शका थी, वह इस शोर-गुल मे दब गई। दोनो ने समझा, दोनोने मन मे निश्चय किया कि जब पहली मुलाक़ात मे कोई बात-चीत नही छिड़ी, तब और गुल-गपाड़ा मचाने की जरूरत नहीं—गुल-गपाड़े का यह वक्त नहीं। भले भले कृष्ण-कान्त का श्राद्ध समाप्त हो जाय—इसके बाद जिसके मन मे जो होगा, हो रहेगा। यह सोच कर गोविन्दलाल ने एक रोज़ उपयुक्त समय समझ कर भ्रमर से कह रक्खा, "भ्रमर! तुम्हारे साथ मेरी कुछ बाते है, बाते कहने मे मेरी छाती फट जायगी। पिता की मृत्यु से बढ कर जो क्षोभ है, उससे इस समय मै व्याकुल हूँ। इस समय वे बाते तुमसे नहीं कर सकता। श्राद्ध के बाद जो कुछ कहना है, कहूँगा। इस बीच मे उन बातो के उठाने की कोई ज़रूरत नहीं।"

बडे कष्ट से आँसू रोक कर भ्रमर ने बालपन से परिचित देवता, काली, दुर्गा, शिव, हरि का स्मरण कर कहा, "मुझे भी कुछ कहना है। तुम्हे जब अवकाश होगा, पूछूँगी।

और कोई बात नहीं हुई। दिन जिस तरह कटता था उसी तरह कटने लगा, देखते देखते वैसा ही दिन कटता रहा, दास, दासी, गृहिणी, पुर की स्त्रियाँ, आत्मीय-स्वजन, कोई नहीं समझ पाया कि आकाश मे बादल चढ़ रहे है, फूलो मे कीडे घुस गये है, चारु-प्रेम-प्रतिमा मे घुन लग गये है। परन्तु घुन लग गये है, यह सही है। जो कुछ था, वह अब नहीं। जो हँसी पहले थी, वह हँसी अब नहीं रही। क्या भ्रमर हँसती नही? क्या गोविन्दलाल हँसते नहीं? हँसते है, परन्तु वह हँसी अब नहीं रही। आँखो से आँखे मिलते जो हँसी पहले उमड पडती है, वह हँसी अब नहीं रही। जो हँसी अध खुली हँसी है अधमुँदी प्रीति की, वह हँसी अब नहीं रही, जो हँसी आधे मे कहती है, संसार सुखमय है, आधे मे कहती है, सुख की अकांचा नहीं पूरी भई—वह हँसी अब नहीं रही। वह चितवन नही रही—जो चितवन देखकर भ्रमर सोचती थी, "कितना रूप है" जो चितवन देखकर गोविन्दलाल सोचते थे, "कितना गुण है" वह चितवन अब नहीं रही, जिस चितवन मे गोविन्दलाल की स्नेहपूर्ण स्थिर दृष्टि थी, प्रमत्त आँखे देखकर भ्रमर सोचती थी, शायद यह समुद्र मैं इस जीवन मे तैर कर पार नहीं कर सकूँगी—जो चितवन देखकर गोविन्दलाल सोचते हुए इस ससार का सब कुछ भूल जाते थे, वह चितवन अब नहीं रही। वह प्रिय सबोधन अब नहीं रहा—वह "भ्रमर", "भौरा", "भँवर", "भौं", "भौरी", "भन भन"—वैसे नित्य नूतन, नित्य स्नेहपूर्ण, रंगपूर्ण, सबोधन अब नहीं रहे। काली, कालिन्दी, कालीमणि आदि वे प्रिय संबोधन अब नही रहे। वे ओ, ए, ऐ अयि आदि प्रिय संबोधन अब नही रहे। वह झूठ मूठ का बुलाना अब नहीं रहा। वह झूठ मूठ की बक-झक अब नही रही। बात-चीत की वह प्रणाली भी अब नही रही। पहले बाते पूरी नही होती थी, अब खोज कर लाना पड़ता है। जो बात भाषा मे आधी, आँखो मे आधी, अधर अधर मे प्रकाशित होती थी, वह

बात अब उठ गई है। जिस बात के कहने की जरूरत नहीं, केवल जवाब में स्वर सुनने की ज़रूरत है, अब वह बात उठ गई है। पहले जब गोविन्दलाल और भ्रमर एक जगह रहते थे, तब गोविन्दलाल के पुकारने पर कोई सीधी तरह से नहीं पाता था—भ्रमर को पुकारने पर बिलकुल ही नहीं पाता था। अब पुकारना नहीं पड़ता—या तो "बड़ी गरमी है" या "कोई पुकार रहा है" कह कर एक आदमी उठ जाता है। उस सुन्दर पूर्णिमा को बादल ने घेर लिया है। कार्तिक की पौर्णमासी को ग्रहण लग गया है, किसी ने खालिस सोने में जस्ते की खाद मिला दी है, किसी ने बँधे स्वर के साज का तार काट दिया है।

और उस दोपहर के सूरज से खिले हुए हृदय में अँधेरा छा गया। गोविन्दलाल उस अँधेरे को उजाला करने के लिए सोचते थे रोहिणी को। भ्रमर उस घोर, महाघोर अंधकार को प्रकाशित करने के लिए सोचती थी यम को। निराश्रय के आश्रय, अगति के गति, प्रेम-शून्य के स्थान तुम हो यम। चित्तविनोदन, दुःखविनाशन, विपत्तिविभंजन, दीनरंजन, यम, तुम हो। आशा-शून्य हुए की आश, प्यार से रहित हुए का प्यार, यम, तुम हो। हे यम, भ्रमर को ग्रहण करो।

अट्ठाइसवाँ परिच्छेद

इसके बाद कृष्णकान्त का भारी श्राद्ध समाप्त हो गया। शत्रुओं ने कहा, "हाँ, समारोह किया गया, पाँच-सात हजार रुपये खर्च हुए।" मित्रों ने कहा, "एक लाख का खर्च हुआ है।" कृष्णकान्त के उत्तराधिकारियों ने मित्रों से कहा, "अंदाज़न पचास हज़ार रुपया

खर्च हुआ है।" हम लोगो ने खाता देखा है, कुल खर्च बत्तीस हजार तीन सौ छप्पन रुपये पाँच आने दो पैसे।

कुछ दिन तक बड़ा हंगामा रहा। श्राद्ध के अधिकारी हरलाल ने आकर श्राद्ध किया। कुछ दिन तक मक्खियो की भन-भन, बर्तनो की झन-झन, कंगलो के शोरगुल और नैयायिको के विचार से गाँव मे कानो के पर्दे पार हो गये। संदेश और मिष्टान्न की आमदनी, कंगलो की आमदनी, चोटी और रामनामियों की आमदनी, रिश्तेदार के रिश्तेदारो, उनके रिश्तेदारो की आमदनी रही। लड़के मिहीदाना, सीताभोग लेकर गेद खेलने लगे; औरतो ने नारियल का तेल कीमती समझकर, निकाली पूड़ियों से बचा घी सर मे लगाना शुरू किया, मदक की दूकान बन्द हो गई, सब मदक पीनेवाले फलाहार के लिए पहुँचे। शराब की दूकान बंद हो गई, कुल शराबी चोटी रख कर, रामनामी खरीद कर, चिट्ठे मे शरीक होकर दक्षिणा लेने पहुँचे। चावल की दर चढ़ गई, क्योकि सिर्फ अन्न का खर्च नहीं, इतने मैदे का खर्च रहा कि चावल के आटे से भी पूरा नहीं हुआ। इतने घी का खर्च रहा कि रोगियो को अडी का तेल नहीं मिला, ग्वालो से मट्ठा खरीदने के लिए जाने पर उन्होने कहना शुरू किया, "हमारा मट्ठा भी ब्राह्मणो के आशीर्वाद से दही बन गया है।"

किसी तरह श्राद्ध का शोरगुल थमा। अंत मे विल पढने की मंत्रणा शुरू हुई। विल पढ़ कर हरलाल ने देखा, विल मे बहुत से गवाह है, शोर मचाने की कोई सम्भावना नही। श्राद्ध समाप्त होने पर हरलाल अपनी जगह लौट गये।

विल पढ़ कर गोविन्दलाल ने भ्रमर से आकर कहा, "तुमने विल की बात सुनी ?"

भ्र०—क्या ?

गो०—तुम्हारा आधा हिस्सा है।

अ०—मेरा या तुम्हारा ?

गो०—अब मुझमे तुममे कुछ भेद हो गया है। मेरा नहीं,—तुम्हारा।

अ०—तो तुम्हारा ही हुआ।

गो०—तुम्हारी जायदाद मै नहीं लूँगा।

अमर को पहले रुलाई आई, लेकिन अहंकार के वशीभूत होकर, रुलाई रोक कर अमर ने कहा, "तो क्या करोगे ?"

गो०—जिससे दो पैसा पैदा करके दिन पूरा कर सकूँ, वही करूँगा।

अ०—वह क्या ?

गो०—देश देश मे भ्रमण करके नौकरी की तलाश करूँगा।

अ०—जायदाद मेरे जेठ-ससुर जी की नहीं, मेरे ससुर जी की है। तुम्हीं उनके उत्तराधिकारी हो,—मै नहीं। जेठ-ससुर जी को विल करने का कोई अधिकार नही था। विल असिद्ध है। मेरे पिता श्राद्ध-समय नेवते मे आकर यह बात समझा दे गये है। जायदाद तुम्हारी है, मेरी नहीं।

गो०—मेरे ताऊ जी झूठ बोलनेवाले नही थे। जायदाद तुम्हारी है, मेरी नहीं। वे जब तुम्हे लिख दे गये है, तब सम्पत्ति तुम्हारी है, मेरी नहीं।

अ०—अगर ऐसा ही सदेह है, तो मै तुम्हे लिखे देती हूँ।

गो०—क्या तुम्हारा दान लेकर मुझे जीना होगा ?

अ०—इसमे हानि क्या है ? मै तुम्हारी दासानुदासी ही तो हूँ ?

गो०—आज-कल यह बात फबती नही, अमर।

अ०—मैने क्या किया है ? मै तुम्हे छोड़कर इस ससार मे और कुछ भी नही जानती। आठ साल की उम्र मे मेरी शादी हुई है—मै सत्तरहवे साल मे पड़ी हूँ। मै यह नौ साल और कुछ नही जानती,

सिर्फ तुम्हे जानती हूँ। मै तुम्हारी पाली हुई हूँ, तुम्हारे खेलने की गुड़िया हूँ—मेरा क्या अपराध है ?

गो०—सोच कर देखो।

भ्र०—असमय मे मै नैहर चली गई थी—मुझसे चाट हुई—मुझसे सैकड़ों, हजारो अपराध हुए—तुम मेरी रक्षा करो। मै कुछ नहीं जानती, सिर्फ तुम्हे जानती हूँ, इसी लिए नाराज हो गये थे।

गोविन्दलाल ने कोई बात नहीं कही। उसके सामने खुले बालो की, बहते आँसुओ की, विवश, कातरा, मुग्धा, पैरो पर लोटती हुई वह सत्रह साल की पत्नी। गोविन्दलाल ने कोई बात नहीं की। गोविन्दलाल तब सोच रहे थे, "यह काली है। रोहिणी कितनी सुन्दरी है ? इसके गुण है, उसके रूप है। इतने दिनो तक मैंने गुणो की सेवा की है, अब कुछ दिन रूप की सेवा करूँगा—अपने इस असार, आशारहित, प्रयोजनशून्य जीवन को अपनी इच्छा के अनुसार पार करूँगा। मिट्टी की हाँडी को जिस रोज़ इच्छा होगी, उसी दिन तोड़-फोड डालूँगा।"

भ्रमर पैरो पर पड़ी हुई रो रही है, "क्षमा करो। मै बालिका हूँ। जो अनन्त सुख और दुःख के देनेवाले, अन्तर्यामी, कातरो के बन्धु है, उन्होने जरूर ये बाते सुन लीं, लेकिन गोविन्दलाल ने एक नहीं सुनी। चुपचाप खड़े रहे। गोविन्दलाल रोहिणी को सोच रहे थे। तीव्र ज्योत्स्नामयी, अनत-प्रभाशालिनी, प्रभात-शुक्रतारा-रूपिणी, रूपतरङ्गिणी, चचला रोहिणी को सोच रहे थे।

जवाब न मिलने पर भ्रमर ने पूछा, "क्या कहते हो ?"

गोविन्दलाल ने कहा, "मै तुम्हे छोड़ जाऊँगा।"

भ्रमर ने पैर छोड़ दिये, उठकर खड़ी हो गई, बाहर जा रही थी, देहरी पर ठोकर खाकर गिर पड़ी, और बेहोश हो गई।

उनतीसवाँ परिच्छेद

"मैंने क्या अपराध किया है जो मुझे छोड़ जायँगे ?" यह बात भ्रमर खोल कर गोविन्दलाल से नहीं कह सकी—लेकिन इस घटना के बाद प्रतिपल मन मे यह जिज्ञासा उठने लगी—"मेरा क्या अपराध है ?"

गोविन्दलाल भी मन मे खोज करने लगे कि भ्रमर का क्या अपराध है ? भ्रमर का जो बड़ा ही कठोर अपराध हुआ है, वह गोविन्दलाल के मन मे एक तरह स्थिर हो चुका है, लेकिन अपराध है कौन-सा, इस पर बहुत सोचकर उन्होने निश्चय नहीं किया। सोच कर देखने पर, मन मे आता था कि भ्रमर ने उन पर अविश्वास किया था, अविश्वास कर उन्हे इतना कठोर पत्र लिखा था—एक दफा झूठ-सच की जॉच उनके सामने उसने नहीं की, यही उसका अपराध है। जिसके लिए मैंने इतना किया, उसने इतने सीधे तौर पर मुझ पर अविश्वास किया, यह उसका अपराध है। हमने सुमति और कुमति की बात पहले कही है। गोविन्दलाल के हृदय मे अगल-बगल बैठी हुई सुमति और कुमति बातचीत कर रही थीं, वह बातचीत मै सबको सुना रहा हूँ।

कुमति ने कहा, "भ्रमर का पहला अपराध यह है कि उसने अविश्वास किया।"

सुमति ने जवाब दिया, "जो अविश्वास के योग्य है, उस पर अविश्वास क्यो न किया जाय ? तुम रोहिणी के साथ यह आनन्द कर रहे हो, इस पर भ्रमर को सदेह हुआ, क्या इसी लिए उसने इतना बड़ा अपराध कर डाला ?"

कु०—अब मै जैसे अविश्वासी हुआ, लेकिन जब भ्रमर ने अविश्वास किया था, तब तो मै निर्दोष था ?

सु०—दो रोज़ पहले हुआ या बाद को, बहुत कुछ नही आता-जाता—दोष तो किया है ? जो दोष कर सकता है, उसे दोषी सोचना क्या इतना बड़ा अपराध है ?

कु०—भ्रमर ने मुझे दोषी ठहराया है, इसी लिए मै दोषी हुआ हूॅ। साधु को चोर कहते कहते साधु चोर ही बन जाता है।

सु०—दोष उसका है जो चोर कहता है। जो चोरी करता है, उसका क्या कुछ भी नहीं ?

कु०—तेरे साथ तकरार मे मै पार नहीं पाऊॅगी। देख न, भ्रमर ने मेरा कैसा अपमान किया ? मै परदेश से आ रहा हूॅ, सुनकर नैहर चली गई।

सु०—अगर उसने जो कुछ सोचा था, उस पर उसका दृढ़ विश्वास हो गया हो, तो उसने सही काम ही किया है। पति अगर दूसरी स्त्री से फॅस जाय, तो नारी-शरीर रख कर कौन नाराज नहीं होती ?

कु०—वह विश्वास ही उसका भ्रम है—और दोष है क्या ?

सु०—यह बात क्या उसने एक दफा भी मुझसे पूछी ?

कु०—नही।

सु०—बिना पूछे हुए तुम नाराज़ हो रहे हो, और भ्रमर बिलकुल बालिका है, बिना पूछे हुए नाराज हो गई थी, इसी लिए इतना हंगामा हुआ। यह सब काम की बाते नहीं, गुस्से का असली कारण क्या है, बतलाऊँ ?

कु०—क्या है, बतलाओ।

सु०—असली बात है रोहिणी। रोहिणी मे जी लगा है—इसी लिए काली भ्रमर अब अच्छी नहीं लगती।

कु०—इतने काल तक भ्रमर किस तरह अच्छी लगी ?

सु०—इतने काल तक रोहिणी नही मिली थी। एक दिन मे कोई बात नही होती। सब कुछ समय पर होता है, आज धूप

निकली है, इसलिए कल दुर्दिन क्यों नहीं हो सकता ? क्या केवल इतना ही—और भी है।

कु०—और क्या ?

सु०—कृष्णकान्त का विल। वृद्ध मन ही मन जानते थे कि भ्रमर को सम्पत्ति दे जाने पर सम्पत्ति तुम्हारी ही रही। यह भी जानते थे कि भ्रमर एक महीने के अन्दर वह सम्पत्ति लिख देगी। परन्तु इधर तुम्हे कुछ कुपथगामी देखकर, तुम्हारे चरित्र के सुधार के लिए, वे तुम्हे भ्रमर के आँचल मे बाँध गये। तुम इतनी दूर तक न समझ कर भ्रमर से नाराज़ हो गये हो।

कु०—यह सच है। मै क्या स्त्री के दिये मासिक पर जीनेवाला आदमी हूँ।

सु०—अरे बाप रे! कितने बडे पुरुष-सिह हो! तो भ्रमर से मुकदमा लड़कर डिग्री क्यो नहीं करा लेते—तुम्हारी ही तो पैत्रिक सपत्ति है ?

कु०—स्त्री के खिलाफ मुकद्दमा लड़ूँगा ?

सु०—तो फिर और क्या करोगे ? जहन्नुम मे जाओ।

कु०—उसी कोशिश मे हूँ।

सु०—रोहिणी क्या साथ जायगी ?

तब सुमति और कुमति मे घुँसौवल और बालखिंचौवल शुरू हुई।

तीसवाँ परिच्छेद

हमे ऐसा विश्वास है कि गोविन्दलाल की माता अगर पक्की गृहिणी होतीं, तो उनकी एक फूँक से ये काले बादल उड़ जाते। वे समझ गई थीं कि बहू के साथ उनके पुत्र का आन्तरिक विच्छेद

हो गया है। स्त्री यह सहज ही समझ सकती है। वे अगर इस समय सदुपदेश से, स्नेह-वाक्यो से, और स्त्री-बुद्धि मे आनेवाले दूसरे विशद उपायो से इसके प्रतिकार की कोशिश करतीं, तो शायद अच्छा फल हो भी सकता था, परन्तु गोविन्दलाल की माता पक्की गृहिणी नहीं थी, बल्कि बहू जायदाद की अधिकारिणी हुई है, सोचकर उस पर उनकी नाराजगी भी हो गई थी। जिस स्नेह के बल से वे भ्रमर का भला चाहती, उनका वह स्नेह भ्रमर पर नही था। पुत्र के रहते सम्पत्ति पुत्र-वधू की हुई, यह उनके लिए असह्य हुआ। वे एक बार भी नही सोच सकी कि भ्रमर और गोविन्दलाल की सम्पत्ति एक है ऐसा मान कर, गोविन्दलाल के चरित्र मे दोप की सम्भावना है यह समझ कर कृष्णकान्त राय गोविन्दलाल के शासन के लिए सम्पत्ति भ्रमर को दे गये है। एक दफा उन्होने अपने मन मे सोचा कि कृष्णकान्त मरते वक्त कुछ हद तक लुप्त-बुद्धि होकर, भ्रान्त-चित्त होकर ही यह अनुचित कार्य कर गये है। उन्होने सोचा कि बहू के ससार मे उन्हे केवल भोजन-वस्त्र की अधिकारिणी और घर मे पड़ी पेट पालनेवालो से गिनी जाकर इस जीवन का निर्वाह करना होगा। इसलिए ससार, परिवार को छोड़ना ही अच्छा है, उन्होने निश्चय किया। एक तो विधवा, दूसरे कुछ अपना-पराया विचार रखनेवाली, वे पति के वियोग के समय से ही काशीवास की इच्छा कर रही थीं, केवल स्त्री-स्वभाव के कारण और पुत्र के स्नेह से अब तक नहीं जा सकी। इस समय उनकी वह कामना और प्रबल हुई। उन्होने गोविन्दलाल से कहा, "मालिक लोग एक एक करके स्वर्ग मे गये, अब मेरा समय निकट हो आया है, तुम पुत्र का काम करो, इस समय मुझे काशी भेज दो।"

गोविन्दलाल एकाएक इस प्रस्ताव से सहमत हो गये, कहा, "चलो, मै तुम्हे खुद काशी छोड़ आऊँ।" दुर्भाग्य से इस समय

भ्रमर एक बार अपनी इच्छा से नैहर गई थी। किसी ने उसे मना नहीं किया। अस्तु भ्रमर के विना जाने गोविन्दलाल काशी-यात्रा का उद्योग करने लगे। कुछ सम्पत्ति उनके नाम से थी, चुपचाप उसे वेच कर उन्होने अर्थ-संग्रह किया। सोना, हीरा आदि कीमती धातु और पत्थर जो उनकी सम्पत्ति मे थे,—वे वेच डाले। इस तरह प्रायः एक लाख रुपया इकट्ठा हुआ। गोविन्दलाल ने, इससे भविष्य मे दिन पूरा करूँगा, निश्चय किया।

माता के साथ काशी चलने का दिन स्थिर कर उन्होने भ्रमर को वुला भेजा। सास जी काशी जायँगी सुनकर, भ्रमर जल्दी आई। आकर सास के पैर पकड़ करके विनय की; सास के पैरो पड़कर रोने लगी, "माँ मै वालिका हूँ—मुझे अकेली न छोड़ जाओ—मै संसार के धर्म का क्या समझती हूँ? माँ,—संसार समुद्र है—मुझे इस समुद्र मे अकेली न वहा जाओ।" सास ने कहा, "तुम्हारी वड़ी ननद रहती है, वे मेरी तरह तुम्हारी देख-भाल करेंगी—और तुम भी गृहिणी हुई हो।" भ्रमर कुछ भी नहीं समझी, सिर्फ रोने लगी।

भ्रमर ने देखा, सामने वड़ी विपत्ति है। सास जी छोड़ कर चलीं—और पति भी उन्हे छोड़ चले—वे भी उन्हे छोड़ने चलकर शायद फिर न लौटे। भ्रमर गोविन्दलाल के पैर पड़कर रोने लगी—वोली, "कितने दिन में आओगे, कहे जाओ।" गोविन्दलाल ने कहा, "कह नहीं सकता। क्योंकि वड़ी इच्छा नहीं।"

भ्रमर पैर छोड़ कर उठ कर खड़ी हो गई, सोचा, "डर क्या है? ज़हर खाऊँगी।"

इसके वाद निश्चय किये हुए यात्रा का दिन आ गया। हरिद्रा-ग्राम से कुछ दूर पालकी से चलकर रेल पर चढ़ना होगा। यात्रावाली शुभ लगन आगई—सब तैयार थे। संदूक, ट्रंक, वाक्स, वैग, गठरियाँ कहार लोग वहँगियों मे ढोने लगे। दास-दासियाँ

स्वच्छ धवल वस्त्र पहन कर, बाल सँवार कर दरवाजे के सामने खड़ी होकर पान चबाने लगीं, वे साथ जायँगी। दरवान छींट के कुर्तों के बंद कसकर, लाठी लिये कहारो से बकझक करने लगे। टोले के लड़के-लड़कियाँ देखने के लिए टूटीं। गोविन्दलाल की माता ने गृहदेव को प्रणाम किया। पुर के गुरुओ से यथायोग्य सम्भाषण कर, रोती हुई पालकी पर बैठीं। पुर के सब लोग रोने लगे, उनकी पालकी आगे बढ़ी।

इधर गोविन्दलाल पुर की दूसरी दूसरी स्त्रियो से सम्भाषण कर, शयनगृह मे रोती हुई भ्रमर से विदा होने के लिए गये। भ्रमर को रोती हुई देखकर, वे जो कुछ कहने के लिए आये थे, वह कह नहीं सके, सिर्फ कहा, "भ्रमर! माँ को छोड़ने चला।"

भ्रमर ने आँसू पोछ कर कहा, "माँ तो काशीवास करेंगी, तुम लौट कर नहीं आओगे?"

यह बात जब भ्रमर ने पूछी, तब उसकी आँखों के आँसू सूख गये थे, उसके स्वर की स्थिरता, गम्भीरता, होठो की दृढ़ प्रतिज्ञा देखकर गोविन्दलाल कुछ ताज्जुब मे आये। एकाएक जवाब न दे सके। भ्रमर ने पति को चुपचाप खड़ा देखकर फिर कहा, "देखो, तुमने मुझे सिखाया है, सत्य ही एकमात्र धर्म है, सत्य ही एकमात्र सुख है। आज तुम मुझसे सत्य कहना—मै तुम्हारी आश्रिता बालिका हूँ, आज मुझसे धोखे की बात न करना—कब आओगे?"

गोविन्दलाल ने कहा, "तो सच ही सच सुनो। लौट कर आने की इच्छा नहीं।"

भ्रमर—क्यो इच्छा नही, क्या यह कहते नहीं जाओगे?

गो०—यहाँ तुम्हारा अन्नदास होकर नही रह सकता।

भ्र०—इसमे हानि क्या है? मै तो तुम्हारी दासानुदासी हूँ।

गो०—जो भ्रमर मेरी दासानुदासी है, वह प्रवास से मेरे लौटने

पर, पहुँचने की प्रतीक्षा मे झरोखे मे बैठी रहेगी, वैसे समय वह नैहर जाकर नहीं बैठेगी।

भ्र०—इसके लिए मै कितने वार तुम्हारे पैर पकड़ चुकी हूँ, क्या एक अपराध की क्षमा नहीं होती ?

गो०—अब उस तरह के सैकड़ों अपराध होगे। तुम अब जायदाद की मालिका हो।

भ्र०—ऐसा नहीं, मैने इस दफा पिता के यहाँ जाकर जो कुछ किया है वह देखो।

यह कह कर भ्रमर ने एक कागज खोल दिया। गोविन्दलाल के हाथ मे देते हुए कहा, "पढ़ो।"

गोविन्दलाल ने पढ़ कर देखा—दान-पत्र है, भ्रमर उचित मूल्य के स्टाम्प पर अपनी कुल सम्पत्ति पति को दान कर रही है। उसकी रजिस्टरी हो गई है। गोविन्दलाल ने पढ़ कर कहा, "तुमने अपने योग्य यह काम किया है, लेकिन तुमसे मुझमे सम्बन्ध क्या है ? मैने तुम्हे गहना दिया है, तुम पाओगी, तुम सम्पत्ति का दान करोगी और मै लेकर सुख-भोग करूँगा—यह सम्बन्ध नहीं। यह कह कर गोविन्दलाल ने उस कीमती पान-पत्र को फाड़ कर उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले।

भ्रमर ने कहा, "पिता ने कह दिया है, इसे फाड़ डालना व्यर्थ है। सरकार मे इसकी नकल है।"

गो०—रहे, मै चला।

भ्र०—कब आओगे ?

गो०—नहीं आऊँगा।

भ्र०—क्यो ? मै तुम्हारी स्त्री हूँ, शिष्या हूँ, आश्रिता हूँ, पति-पालिता हूँ, दासानुदासी हूँ, तुम्हारी बात सुनने की भिखारिन हूँ—आओगे क्यो नहीं।

गो०—इच्छा नहीं।

भ्र०—क्या धर्म नहीं है ?

गो०—मेरा शायद वह भी नहीं।

भ्र०—बड़े कष्ट से भ्रमर ने आँसू रोके। आज्ञामात्र से आँसू रुक गये—भ्रमर हाथ जोड़ कर अकंपित कंठ से कहने लगी, "तो जाओ—तुमसे हो सके तो न आना। विना अपराध के मुझे छोडना चाहते हो तो छोड दो,—लेकिन याद रक्खो, ऊपर देवता है। याद रक्खो, एक रोज़ मेरे लिए तुम्हे रोना होगा। याद रक्खो—एक दिन तुम खोजोगे, इस पृथिवी मे अकृत्रिम आन्तरिक स्नेह कहाँ है ? देवता साक्षी है। अगर मै सती हूँ, काया, मन और वाक्य से तुम्हारे चरणो मे मेरी भक्ति है, तो मेरी तुमसे फिर मुलाकात होगी। मै उसी आशा से प्राण रक्खूँगी। अब जाओ, कहने की इच्छा कहो कि अब नही आऊँगा। लेकिन मै कहती हूँ—फिर आओगे—फिर भ्रमर कह कर पुकारोगे—मेरे लिए रोओगे। अगर यह बात निष्फल होगी, तो समझना—देवता मिथ्या है, धर्म मिथ्या है, भ्रमर असती है। तुम जाओ, मुझे दुःख नही। तुम मेरे ही हो—रोहिणी के नहीं।"

यह कह कर भ्रमर ने भक्तिपूर्वक पति के चरणो मे प्रणाम कर, मन्द गति से दूसरे कमरे मे जाकर दरवाजा वन्द कर लिया।

इकतीसवाँ परिच्छेद

यह आख्यायिका शुरू करने के कुछ पहले भ्रमर के एक पुत्र हुआ था और सूतिकागृह मे ही मर गया था। भ्रमर आज दूसरे कमरे मे जाकर उस सात रोज के लड़के के लिए रोने बैठी। फर्श पर धूल मे लोटती हुई लम्बी लम्बी साँस लेती छोड़ती हुई पुत्र के लिए रोने लगी—"अरे मेरे वच्चे, मक्खन के पुतले, मुझ कंगालिन के

जिगर के टुकड़े, आज तू कहाँ है ? आज तू रहता तो किसकी मजाल थी, जो मुझे छोड़ जाता ? मेरी माया की डोर काटता, तेरी माया की कौन काटता ? मै कुरूपा हूँ, बुरी हूँ, तुझे कौन कुरूप कहता ? तुझसे कौन सुन्दर था ? एक दफा आजा मेरे लाल—इस विपत्ति के वक्त एक दफा दिखाई नहीं दे सकते ? गुज़र जाने पर क्या फिर मुलाकात नहीं होती ?" भ्रमर तब हाथ जोड़ कर, आँखे उठाकर, अधखिली बातो से मन ही मन देवताओं से पूछने लगी—"कोई मुझे बता दे, मेरे किस कसूर से इस १७ साल की उम्र मे ऐसी बुरी हालत हुई। मेरा बच्चा गुजर गया—मेरे पति ने मुझे छोड़ दिया। मेरी सिर्फ १७ साल की उम्र—इस उम्र मे पति को प्यार करना छोड़ और कुछ भी मैने नहीं चाहा—और किसी को मैने प्यार नहीं किया—इस लोक मे मेरी दूसरी कामना नहीं—और कोई कामना करना मैने सीखा भी नहीं—फिर आज इस सत्रह साल की उम्र मे निराश क्यो हुई ?"

रोती-धोती भ्रमर ने यह सिद्धान्त किया—देवता बड़े निठुर है। जब देवता निठुर है, मनुष्य और क्या करेगा, सिर्फ आँसू बहायेगा। भ्रमर सिर्फ रोने लगी। इधर गोविन्दलाल भ्रमर से विदा होकर धीरे-धीरे बाहरवाले कमरे मे आये। हम सच कहेगे, गोविन्दलाल आँसू पोछते पोछते आये। बालिका की बड़ी ही सरल अकृत्रिम जो प्रीति है, उद्वेलित होती हुई, बात-बात मे खेलती हुई, जिसकी धारा दिन-रात बह रही है, भ्रमर से वह अनमोल प्रीति पाकर गोविन्दलाल सुखी हुए थे। अब गोविन्दलाल को वह याद आई। याद आया कि वे जो कुछ छोड़ आये, वह और पृथ्वी मे नहीं पायेगे। सोचा, मैने जो कुछ किया है, वह अब लौट नहीं सकता—तो चलता हूँ, यात्रा कर चुका हूँ, शायद अब लौटा नहीं जायगा। कुछ हो, चल चुका हूँ, अब चलूँ।

इस समय अगर गोविन्दलाल दो कदम लौट कर भ्रमर के भेड़े

हुए दरवाज़े ढकेल कर एक दफ़ा कहते—"भ्रमर, मैं फिर आया हूँ", तो कुल उलझन सुलझ जाती। बहुत दफे गोविन्दलाल की वह इच्छा हुई थी। इच्छा होने पर भी उन्होंने वैसा नहीं किया। इच्छा होने पर भी कुछ लज्जा लगी। उन्होंने सोचा, इतनी जल्दी क्या है ? जब मैं लाऊँगा, तभी लौट आऊँगा। भ्रमर के पास गोविन्दलाल अपराधी हो गये। भ्रमर से फिर मुलाकात करने की हिम्मत नहीं हुई। कुछ हो, एक निश्चय करने की अक्ल नहीं हुई। जिस रास्ते से जा रहे थे, उसी रास्ते चले, विचार का पल्ला छोड कर उन्होंने चौपाल मे आकर सजे हुए घोड़े पर चढ़ कर उसे चाबुक लगाया। उनके रास्ता चलते समय रोहिणी की रूप-राशि हृदय मे खिल उठी।

दूसरा खण्ड

पहला परिच्छेद

(पहला साल)

हरिद्राग्राम के मकान मे खबर आई—गोविन्दलाल माता आदि के साथ स्वस्थ शरीर से निर्विघ्न काशी पहुँच गये। भ्रमर के पास कोई पत्र नहीं आया। पत्र मुलाज़िमों के पास आने लगा। मान से भ्रमर ने भी पत्र नहीं लिखा।

एक महीना बीता, दो महीने बीते, पत्र आते रहे। अंत मे एक दिन संवाद आया कि गोविन्दलाल काशी से घर के लिए रवाना हो चुके है। भ्रमर सुनकर समझी कि गोविन्दलाल माँ को भुलावा देकर दूसरी जगह गये है। घर आवेगे, ऐसा भरोसा नहीं हुआ।

इस समय भ्रमर छिपाकर सदा रोहिणी की खबर लेने लगी। रोहिणी भोजन पकाती है, परोसती है, खाती है, नहाती है, पानी भरती है और कोई खबर नहीं है। क्रमशः एक दिन यह संवाद आया कि रोहिणी बीमार है। घर के भीतर चादर ओढ़ कर पड़ी रहती है, बाहर नहीं निकलती। ब्रह्मानन्द आप पकाते-खाते है।

इसके बाद एक रोज़ खबर आई कि रोहिणी कुछ अच्छी हो गई है, लेकिन रोग की जड़ नही गई। शूल रोग है—कोई दवा नहीं—अच्छी होने के लिए रोहिणी ताड़केश्वर धरना देने जायगी। बाद को खबर आई—रोहिणी धरना देने के लिए ताड़केश्वर गई है, अकेली गई है—साथ कौन जायगा ?

इधर तीन-चार महीने बीत गये, गोविन्दलाल लौटकर नहीं आये। पाँच-छ: महीने बीते, गोविन्दलाल नहीं लौटे। भ्रमर के रोने

की समाप्ति नहीं हुई। सिर्फ सोचती थी, अब कहाँ है? कैसे है? खबर मिले तो आराम की साँस लूँ। खबर भी क्यों नहीं मिलती?

अंत मे ननद से कहकर सास को पत्र लिखाया—"आप माता हैं, अवश्य अपने पुत्र का सवाद पाती है।" सास ने लिखा, वे गोविन्दलाल का संवाद पाया करती है। गोविन्दलाल प्रयाग, मथुरा, जयपुर आदि जगहो मे घूम कर इस समय दिल्ली मे रह रहा है। वहाँ से जल्द दूसरी जगह जायगा। कहीं स्थायी रूप से नही रह रहा। इधर रोहिणी भी फिर नहीं लौटी, भ्रमर सोचने लगी, भगवान् जाने, रोहिणी कहाँ गई। मै अपने मन का सदेह पाप-मुँह से व्यक्त नही करूँगी। भ्रमर और सह नहीं सकी। रोती हुई ननद से कह कर पालकी मे बैठ कर नैहर चली गई। वहाँ से गोविन्दलाल का संवाद मिलना दुरूह हुआ देखकर फिर लौट आई, आकर हरिद्राग्राम मे भी पति का कोई संवाद न पाकर फिर सास को खत लिखाया। इस दफा सास ने लिखा, "गोविन्दलाल अब कोई सवाद नहीं देता, इस समय वह कहाँ है हमे नहीं मालूम। कोई संवाद नहीं मिला।" इस तरह पहला साल कट गया। पहले साल के समाप्त होने पर भ्रमर रुग्ण होकर पलँग पर पड़ी। अपराजिता फूल कुम्हलाने लगा।

दूसरा परिच्छेद

भ्रमर रुग्ण होकर शय्या पर पड़ी है, सुन कर भ्रमर के पिता देखने आये। भ्रमर के पिता का परिचय हमने विशेष नहीं दिया—अब देगे। उनके पिता माधवीनाथ सरकार की उम्र ४१ साल की है, देखने मे खासे अच्छे जवान, उनके चरित्र के सम्बन्ध मे लोगो

मे बडे मतभेद है। बहुतेरे उनकी बड़ी तारीफ करते हैं, बहुतेरे कहते है, उनकी तरह का बुरा आदमी दूसरा नहीं। वे चतुर है, यह सभी मानते है—और जो उनकी तारीफ करते है, वे भी उनसे डरते है।

लड़की की दशा देखकर माधवीनाथ बहुत रोये। देखा—वह श्यामा सुन्दरी, जिसके कुल अंग सुललित गठनवाले थे, अब सूख गये है, शरीर कॉटा हो गया है, गले का घेघ दिखने लगा है, ऑखे जैसे गढ़े मे समा गई हो। भ्रमर भी बहुत रोई। अंत में दोनो का रोना रुकने पर भ्रमर ने कहा, "पिता जी, मुझे जान पड़ता है अब अधिक दिन नहीं हूँ। मुझसे कुछ धर्म-कर्म कराओ। मै अभी लड़की हूँ तो क्या हुआ, मेरे दिन पूरे हो आये है। दिन पूरे हो तो अब देर क्यो करूँ? मेरे बहुत धन है, मै व्रत-नियम करूँगी। कौन यह सब करायेगा? पिता जी, तुम्हीं इसकी व्यवस्था करो।"

माधवीनाथ ने कोई जवाब नहीं दिया—जब और न सहा गया तब बाहरवाले कमरे मे आये। वहॉ बड़ी देर तक बैठे रोते रहे, सिर्फ रोना ही नहीं—वह मर्मभेदी दु:ख माधवीनाथ के हृदय मे घोरतर क्रोध मे बदल गया। मन ही मन सोचने लगे, "जिसने मेरी लड़की पर यह अत्याचार किया है—उस पर ऐसा ही अत्याचार करे, इस संसार मे क्या ऐसा कोई नहीं?" सोचते सोचते माधवीनाथ का हृदय कातरता के बदले क्रोध से भर गया। माधवीनाथ ने तब बड़ी बड़ी लाल ऑखे निकाल कर प्रतिज्ञा की, "जिसने मेरी भ्रमर की ज़िन्दगी बिगाड़ दी, मै भी उसी तरह उसकी ज़िन्दगी बरबाद कर दूँगा।"

तब माधवीनाथ बहुत कुछ स्थिर होकर अंत.पुर मे फिर गये। कन्या से जाकर कहा, "बेटी, तुम व्रतनियम करने की बात कह रही थीं, मै वही बात सोच रहा था। अभी तुम्हारा शरीर बहुत

रुग्ण है, व्रत-नियम करने पर बहुत उपवास करना पडता है, अभी तुम उपवास सहने लायक नहीं हो। तुम्हारा शरीर कुछ स्वस्थ हो जाय।"

भ्र०—यह शरीर अब स्वस्थ क्या होगा?

माध०—स्वस्थ नहीं होगा—क्या हुआ है? यहाँ तुम्हारी कुछ भी दवा-दारू नहीं होती—होगी भी कैसे? ससुर नहीं—सास नहीं, कोई पास नहीं—वैद्य को कौन दिखायेगा? तुम इस वक्त हमारे साथ चलो। हम तुम्हे घर ले जाकर चिकित्सा करावेगे। हम अभी दो रोज यहीं रहेगे, इसके वाद हम तुम्हे अपने साथ राजग्राम ले जायँगे।

राजग्राम मे भ्रमर का नैहर है।

लड़की से बिदा होकर माधवीनाथ लड़की के मुलाजिमो के पास गये। दीवान जी से पूछा? क्यो, वाबू का कोई खत भी आता है? दीवान जी ने जवाब दिया, "जी नहीं।"

माध०—वे इस वक्त कहाँ है?

दीवान जी—उनकी कोई खवर हममे कोई नही बता सकता। वे कोई खवर नहीं भेजते।

माध०—यह खवर किससे मालूम हो सकती है?

दी०—यह मालूम होता तो हमीं लोग खवर मालूम करते रहते। माता जी के पास सवाद जानने के लिए काशी आदमी भेजा था—लेकिन वहाँ से भी कोई संवाद नहीं आया। वाबू का इस वक्त अज्ञातवास है।

तीसरा परिच्छेद

लड़की की दुर्दशा देखकर माधवीनाथ ने दृढ़ प्रतिज्ञा की थी कि इसका प्रतीकार करूँगा। गोविन्दलाल और रोहिणी इस अनिष्ट के मूल है। अस्तु, पहले पता लगाना जरूरी है कि ये दोनो नीच कहाँ है? नहीं तो दुष्टो का दंड न होगा—भ्रमर भी मरती है।

वे बिलकुल छिप गये है। जिन सूत्रो से पकड़ मे आने की संभावना थी, वे सब काट दिये है, पैर के निशान तक पोछ डाले है। परन्तु, माधवीनाथ ने कहा, "अगर मै उनका पता न लगा सका तो पौरुष की बड़ाई व्यर्थ करता हूँ।"

इस तरह का दृढ़ संकल्प कर माधवीनाथ अकेले-अकेले रायो के मकान से निकले। हरिद्राग्राम मे एक डाकखाना था, हाथ मे बेत लिये, झूमते हुए पान चबाते चबाते धीरे धीरे निरीह भले आदमी जैसे माधवीनाथ वहाँ गये।

डाकखाने मे एक छप्पर के नीचे अँधेरे मे पन्द्रह रुपया महीना पानेवाले एक डिप्टी पोस्टमास्टर विराजमान है। आम की लकड़ी की एक टूटी मेज पर कुछ चिट्ठियाँ, चिट्ठी की फ़ाइल, लिफाफे, एक कुल्हड़ मे थोड़ा-सा गोद, एक तराज़ू, डाकखाने की मुहर आदि लेकर पोस्टमास्टर उर्फ पोस्ट बाबू गम्भीर भाव से जनाब डाकिया साहब पर अपना रोब गाँठ रहे है। डिप्टी पोस्टमास्टर साहब माहवारी तनख्वाह १५ रुपया पाते थे। जनाब डाकिया साहब ७ रुपये। जनाब डाकिया साहब सोचते थे, सात आने और पन्द्रह आने मे जो फर्क है पोस्टमास्टर से मेरा उससे ज्यादा फर्क नहीं। लेकिन पोस्टमास्टर मन ही मन सोचते थे, मै एक डिप्टी हूँ, और यह एक प्यादा है—मै इसका हर्ता, कर्ता, विधाता हूँ—इसमे 'मुझमे ज़मीन आसमान का फर्क है। इस बात को साबित करने के लिए पोस्टमास्टर साहब हमेशा उस ग़रीब पर

ऐंठा करते है—वह सात आने के वजन का जवाब दिया करता है। वावू इस वक्त चिट्ठी तोल रहे थे और साथ साथ प्यादे पर अस्सी आने वज़न की हेठी रख रहे थे, ऐसे समय प्रशान्त-मूर्ति, हास्य-वदन माधवीनाथ वहाँ उपस्थित हुए। भद्रजन देखकर उस समय पोस्टमास्टर बाबू प्यादे से बक-झक बद करके, मुँह फैलाकर, उनकी तरफ ताकने लगे। भद्रजन का समादर किया जाता है, ऐसी एक वात उनके मन मे आई तो, लेकिन समादर किस प्रकार किया जाता है, यह उनकी शिक्षा के भीतर नहीं था, इसलिए वैसा नहीं हो सका।

माधवीनाथ ने देखा, एक बन्दर है, हँस कर पूछा, "ब्राह्मण है?"

पोस्टमास्टर ने कहा, "हाँ—तु—आप?"

माधवीनाथ ने हँसी कुछ रोककर सर झुकाये हुए हाथ जोड़कर मत्था छूते हुए कहा, "प्रात. प्रणाम!"

माधवीनाथ कुछ विपत्ति मे पडे, पोस्ट वावू ने कहा तो, "वैठिए" लेकिन वैठे कहाँ—वावू ख़ुद एक तीन पाये की कुर्सी पर वैठे है, इसके अलावा और बैठने का आसन कहीं नहीं। तब पोस्ट-मास्टर वावू के हरिदास नाम के सात आनेवाले प्यादे ने एक टूटे स्टूल पर से फटी वहियो की राशि उतार कर माधवीनाथ को बैठने के लिए दिया।

माधवीनाथ ने बैठकर उस पर निगाह डालते हुए कहा, "कहिए, आप कैसे है, आपको जैसे कहीं देखा है—क्यो?"

प्यादा—जी, मै चिट्ठियाँ बाँटा करता हूँ।

माधवी०—इसी लिए पहचानता हूँ। जरा चिलम तो भर लो।

माधवीनाथ दूसरे गाँव के आदमी है, उन्होंने कभी चिट्ठीरसा हरिदास वैरागी को नही देखा और वैरागी वावा जी ने भी उन्हे कभी नहीं देखा। वावा जी ने सोचा, वावू मजे के आदमी है, कभी

माधवी०—कितने कितने दिन बाद ब्रह्मानन्द की चिट्ठी आती है ?

पोस्ट०—प्राय: महीने महीने, कुछ निश्चय नहीं।

माध०—तो रजिस्ट्री की हुई चिट्ठी ही आती है ?

पोस्ट०—हाँ, प्राय: बहुत-सी चिट्ठियाँ रजिस्ट्री की हुई।

माध०—किस डाकखाने से रजिस्ट्री आती है ?

पोस्ट०—याद नहीं।

माध०—तुम्हारे डाकखाने मे एक रसीद रहती है न ?

पोस्टमास्टर ने रसीद खोज कर निकाली। एक पढ़ कर कहा, "प्रसादपुर।"

"प्रसादपुर किस ज़िले मे है ? अपनी किताब देखो।"

पोस्टमास्टर ने कॉपते हुए किताब उठाई, कहा, "जशोर।"

माध०—देखो फिर, और कहाँ कहाँ से रजिस्ट्री उसके नाम आई है। कुल रसीदे देखो।

पोस्टमास्टर ने देखा, इधर जितने पत्र आये है, सब प्रसादपुर से आये है। माधवीनाथ पोस्ट बाबू के कॉपते हाथ मे दस रुपये का एक नोट रख कर बिदा हुए। तब तक हरिदास बाबा जी को हुक्का नहीं मिला। माधवीनाथ हरिदास बाबा जी के लिए एक हुक्का रख गये। कहना नहीं होगा कि पोस्ट बाबू ने उसे आत्मसात् किया।

चौथा परिच्छेद

माधवीनाथ हँसते हुए लौट आये। गोविन्दलाल और रोहिणी के अध:पतन की बाते माधवीनाथ लोगो से सुन चुके थे। उन्होंने मन-ही-मन निश्चय कर लिया था कि रोहिणी और गोविन्दलाल एक जगह छिपकर रह रहे है। ब्रह्मानन्द की हालत भी वे अच्छी

तरह जानते थे। जानते थे कि रोहिणी के सिवा उनके और कोई नहीं। अस्तु जब डाकखाने मे मालूम किया कि ब्रह्मानन्द के नाम महीने महीने रजिस्ट्री आती है, तब समझे कि या तो गोविन्दलाल महीने महीने उन्हे खर्च भेजते है या रोहिणी भेजती है। प्रसादपुर से चिट्ठी आती है, तो दोनो प्रसादपुर या उसके पास के किसी स्थान पर अवश्य रहते है, परन्तु निश्चय को दृढ़तर करने के लिए लडकी के घर जाते ही उन्होने एक आदमी थाने भेजा। दारोगा को लिख भेजा, "एक सिपाही भेजिएगा। मुमकिन, कुछ चोरी का माल पकड़ा दूँ।"

दारोगा माधवीनाथ को बहुत अच्छी तरह जानते थे—डरते भी थे, पत्र पाते ही निद्रासिह सिपाही को उन्होने भेज दिया। माधवीनाथ ने निद्रासिह के हाथ मे दो रुपये देकर कहा, "सुनते हो, हिन्दी-फिन्दी न कहना—जैसा हम कहते है, वैसा करो। उस पेड़ के नीचे जाकर छिपे रहो, ताकि यहाँ से देख पडो। और कुछ नही करना होगा।" निद्रासिंह स्वीकृत होकर बिदा हुआ। माधवीनाथ ने तब ब्रह्मानन्द को बुला भेजा। ब्रह्मानन्द आकर पास बैठे। तब वहाँ और कोई नहीं था।

एक ने दूसरे से खैरियत पूछी, बाद को माधवीनाथ ने कहा महाशय, आपसे हमारे स्वर्गीय सम्बन्धी जी की बड़ी आत्मीयता थी। अब उनके तो कोई है नहीं—मेरे जामाता भी विदेश मे रहते है। आप पर कोई विपत्ति-आपत्ति पड़ने पर हमी लोगो को देखना पड़ता है—इसी लिए आपको बुलाया है।"

ब्रह्मानन्द का मुँह सूख गया। पूछा, "विपत्ति कैसी महाशय ?"

माधवीनाथ ने गम्भीरतापूर्वक कहा, "आप कुछ विपत्ति मे जरूर है।"

ब्र०—कौनसी विपत्ति, महाशय ?

माँगने पर चार आने पैसे क्यो बख्शिश नहीं देंगे ? यह सोचकर हरिदास हुक्के की तलाश मे दौड़े।

माधवीनाथ तम्बाकू बिलकुल नहीं पीते। सिर्फ हरिदास बाबा जी को विदा करने के लिए तम्बाकू की फरमाइश की थी।

जनाब चिट्ठीरसा जब दूसरी जगह गये, माधवीनाथ ने पोस्ट बाबू से कहा, "आपसे एक बात पूछने के लिए आया हूँ।"

पोस्टमास्टर बाबू मन-ही-मन हँसे, वे पूर्वबङ्ग के रहनेवाले थे, विक्रमपुर के। दूसरी ओर कैसे भी बेवकूफ क्यो न हों अपना काम समझने मे सुई की नोक-सी उनकी पैनी बुद्धि थी। वे समझ गये कि बाबू किसी विषय की खोज मे आये है, पूछा, "कौन-सी बात, जनाब ?"

माधवी०—आप ब्रह्मानन्द को पहचानते है ?

पोस्ट०—नहीं पहचानता—पहचानता हूँ—अच्छी तरह नहीं पहचानता।

माधवीनाथ समझ गये, अवतार अपना रूप धारण करने का उपक्रम कर रहा है। पूछा, "आपके डाकखाने मे ब्रह्मानन्द घोष के नाम का कोई पत्र आता है।"

पोस्ट०—आपसे ब्रह्मानन्द घोष की जान-पहचान नहीं ?

माधवी०—हो या न हो, यह बात आपसे मालूम करने आया हूँ।

पोस्टमास्टर बाबू तब अपना ऊँचा पद और डिप्टीगरी का अभिमान याद करके डट कर बैठे, और कुछ रुष्ट होकर कहा, "डाकखाने की खबर कहने की हमे मनाही है।" यह कह कर पोस्टमास्टर चुपचाप डाक वज़न करने लगे।

माधवीनाथ मन-ही-मन हँसने लगे, खुलकर कहा, "अजी जनाब, आप सीधे बात नहीं बतलायेंगे, यह हमे मालूम है। इसके लिए कुछ साथ भी ले आये है—कुछ दे जायँगे, इस समय जो जो कुछ पूछते है, सही सही बतला तो जाइए।"

तब पोस्ट बाबू ने हर्षोत्फुल्ल मुख से पूछा, "क्या पूछते है ?"

माधवी०—यही पूछते है कि ब्रह्मानन्द के नाम की कोई चिट्ठी-पत्री डाकखाने मे आती है ?

पो०—आती है।

मा०—कितने कितने दिन बाद ?

पो०—जो बात कह दी, उसके लिए अभी रुपया नहीं मिला। पहले उसका रुपया निकालिए, तब दूसरी बात पूछिएगा।

माधवीनाथ की इच्छा थी कि पोस्टमास्टर को कुछ दे जायँ। परन्तु उसके चरित्र से बहुत परेशान हो उठे। कहा, "सुनो, तुम्हे विदेशी आदमी देख रहा हूँ, मुझे पहचानते हो ?"

पोस्टमास्टर ने सर हिला कर कहा, "नहीं। आप कोई भी हो, हम लोग डाकखाने की जिस-तिस से थोडे ही कहते है ? तुम कौन हो ?

माध०—मेरा नाम माधवीनाथ सरकार है—राजग्राम मे रहता हूँ। मेरे साथ कितने लठैत रहते है, कुछ खबर रखते हो ?

पोस्टमास्टर डरे—माधवी बाबू का नाम और प्रबल प्रताप सुना था। पोस्ट बाबू कुछ देर चुप रहे।

माधवीनाथ कहने लगे, "मै जो कुछ तुमसे पूछूँ, सही सही जवाब दो। जरा भी इधर-उधर न करना। करोगे तो तुम्हे कुछ दूँगा नही—एक पैसा भी नहीं। परन्तु अगर नही बतलाओगे या बहकाओगे, तो तुम्हारे घर मे आग लगवा दूँगा, तुम्हारा डाकखाना लुटवा लूँगा, अदालत मे साबित कराऊँगा कि तुमने अपने आदमी लगाकर सरकारी रुपया चुराया है—क्यो, अब बतलाओगे ?

पोस्ट बाबू थरथर काँपने लगे, कहा, "आप नाराज क्यो होते है ? मै तो आपको पहचानता था नही। मामूली आदमी सोच कर ही वैसा कहा था—आप जब आये है, तब जो कुछ पूछेगे, वह कहूँगा।"

माधवी०—कितने कितने दिन बाद ब्रह्मानन्द की चिट्ठी आती है ?

पोस्ट०—प्राय: महीने महीने, कुछ निश्चय नहीं।

माध०—तो रजिस्ट्री की हुई चिट्ठी ही आती है ?

पोस्ट०—हाँ, प्राय: बहुत-सी चिट्ठियाँ रजिस्ट्री की हुई।

माध०—किस डाकखाने से रजिस्ट्री आती है ?

पोस्ट०—याद नहीं।

माध०—तुम्हारे डाकखाने मे एक रसीद रहती है न ?

पोस्टमास्टर ने रसीद खोज कर निकाली। एक पढ़ कर कहा, "प्रसादपुर।"

"प्रसादपुर किस ज़िले मे है ? अपनी किताब देखो।"

पोस्टमास्टर ने काँपते हुए किताब उठाई, कहा, "जशोर।"

माध०—देखो फिर, और कहाँ कहाँ से रजिस्ट्री उसके नाम आई है। कुल रसीदे देखो।

पोस्टमास्टर ने देखा, इधर जितने पत्र आये है, सब प्रसादपुर से आये है। माधवीनाथ पोस्ट बाबू के काँपते हाथ मे दस रुपये का एक नोट रख कर बिदा हुए। तब तक हरिदास बाबा जी को हुक्का नहीं मिला। माधवीनाथ हरिदास बाबा जी के लिए एक हुक्का रख गये। कहना नहीं होगा कि पोस्ट बाबू ने उसे आत्मसात् किया।

चौथा परिच्छेद

माधवीनाथ हँसते हुए लौट आये। गोविन्दलाल और रोहिणी के अध:पतन की बाते माधवीनाथ लोगो से सुन चुके थे। उन्होने मन-ही-मन निश्चय कर लिया था कि रोहिणी और गोविन्दलाल एक जगह छिपकर रह रहे है। ब्रह्मानन्द की हालत भी वे अच्छी

तरह जानते थे। जानते थे कि रोहिणी के सिवा उनके और कोई नहीं। अस्तु जब डाकखाने मे मालूम किया कि ब्रह्मानन्द के नाम महीने महीने रजिस्ट्री आती है, तब समझे कि या तो गोविन्दलाल महीने महीने उन्हे खर्च भेजते है या रोहिणी भेजती है। प्रसादपुर से चिट्ठी आती है, तो दोनो प्रसादपुर या उसके पास के किसी स्थान पर अवश्य रहते है, परन्तु निश्चय को दृढतर करने के लिए लड़की के घर जाते ही उन्होने एक आदमी थाने भेजा। दारोगा को लिख भेजा, "एक सिपाही भेजिएगा। मुमकिन, कुछ चोरी का माल पकड़ा दूँ।"

दारोगा माधवीनाथ को बहुत अच्छी तरह जानते थे—डरते भी थे, पत्र पाते ही निद्रासिंह सिपाही को उन्होने भेज दिया। माधवीनाथ ने निद्रासिह के हाथ मे दो रुपये देकर कहा, "सुनते हो, हिन्दी-फिन्दी न कहना—जैसा हम कहते है, वैसा करो। उस पेड़ के नीचे जाकर छिपे रहो, ताकि यहाँ से देख पडो। और कुछ नही करना होगा।" निद्रासिह स्वीकृत होकर विदा हुआ। माधवीनाथ ने तब ब्रह्मानन्द को बुला भेजा। ब्रह्मानन्द आकर पास बैठे। तब वहाँ और कोई नहीं था।

एक ने दूसरे से खैरियत पूछी, बाद को माधवीनाथ ने कहा महाशय, आपसे हमारे स्वर्गीय सम्बन्धी जी की बड़ी आत्मीयता थी। अब उनके तो कोई है नहीं—मेरे जामाता भी विदेश मे रहते है। आप पर कोई विपत्ति-आपत्ति पड़ने पर हमी लोगो को देखना पड़ता है—इसी लिए आपको बुलाया है।"

ब्रह्मानन्द का मुँह सूख गया। पूछा, "विपत्ति कैसी महाशय ?"

माधवीनाथ ने गम्भीरतापूर्वक कहा, "आप कुछ विपत्ति मे जरूर है।"

ब्र०—कौनसी विपत्ति, महाशय ?

पाँचवाँ परिच्छेद

देखो, धीरे धीरे शीर्णकाया चित्रा नदी बह रही है—किनारे पीपल, कदम, आम, खजूर आदि असंख्य वृक्ष शोभित हैं, उपवन में कोयल, पपीहा, दोयल आदि बोल रहे है। पास गाँव नहीं। प्रसाद-पुर नाम का एक छोटा बाजार प्रायः कोस भर दूर है। यहाँ मनुष्यो का समागम नहीं, देखकर निःशङ्क चित्त से, पापाचरण का स्थान है, समझ कर, पहले एक नीलकर साहब ने यहाँ नील की एक कोठी बनाई थी। इस समय नीलकर और उसका ऐश्वर्य ध्वंसपुर को प्रयाण कर गया है—उसके अमीन, तगादेदार, नायब, गुमाश्ते यथायोग्य स्थानो मे अपने उपार्ज्जित कर्मो का फल भोग रहे है। एक बङ्गाली ने वह जन-शून्य प्रान्तर-स्थित रम्य अट्टालिका खरीदकर उसे सजाया था। फूलो से, पत्थर की मूर्तियो से, आसनो से, दर्पणो से, चित्रों से गृह विचित्र हो गया था। उसके भीतर के दोमञ्ज़िले के बड़े कमरे में हम लोग चले। कमरे मे स्त्रियो के कुछ चित्र है—परन्तु कुछ सुरुचिविगर्हित है—अवर्णनीय। निर्मल सुकोमल आसन पर बैठा हुआ एक दाढ़ीवाला मुसलमान एक तम्बूरे के कान ऐठ रहा है—पास बैठी हुई एक युवती ठन् ठन् करके दाये (तबले) में उँगली मार रही है—साथ साथ हाथ के सोने के गहनो की झनकार हो रही है—पास की दीवार से लगे दो बड़े आईनो मे दोनो के बिम्ब भी वैसा ही कर रहे थे। पास के कमरे में बैठे एक युवा पुरुष उपन्यास पढ़ रहे है और बीच के खुले दरवाज़े से युवती का काम देख रहे है।

तम्बूरे के कान ऐठते ऐठते दाढ़ीधर तार मे उँगली मार रहा था। जब तार की मेव-मेव और तबले की ठन्-ठन् उस्ताद जी की विवेचना मे मिल गई, तब वे उस मूछ और दाढ़ी के अँधेरे के भीतर से कुछ तुषारधवल-दन्त निर्गत करके वृषभदुर्लभ कण्ठस्वर निकालने लगे।

स्वर निकालते निकालते वे तुषारधवल-दन्त तरह तरह की खींचतान मे बदलने लगे और भौरे-सी काली दाढ़ी की राशि उसका अनुवर्तन करती हुई तरह तरह का तमाशा करने लगी। उस खींचतान से ताड़ित उस युवती ने भी वृषभ-दुर्लभ कण्ठ से अपना कोमल गला मिलाया और गाने लगी—मोटी और बारीक आवाज़ से एक प्रकार सुनहले-रुपहले तौर का गाना होने लगा।

यहीं आखिरी पर्दा गिराने की इच्छा होती है। जो अपवित्र है, अदर्शनीय है, वह हम नही दिखायेंगे। जिसके कहे बिना काम नहीं चलता, वही कहेंगे। लेकिन फिर भी उस अशोक-बकुल-कुरबक-कुटज-कुञ्ज मे भ्रमर-गुञ्जन, कोकिल-कूजन, उस छोटी नदी की तरङ्ग पर तैरते-चलते राजहंसो का कलनाद, जुही, चमेली, बेला, मधु-मालती आदि फूलो का सौरभ, उस कमरे मे नीले शीशे के भीतर से आती धूप की अपूर्व माधुरी, स्फटिक आदि से निर्मित उस चाँदी के पुष्पाधार पर अच्छी तरह रक्खे गुलदस्ते की शोभा, कमरे को भड़कीला बनानेवाली उन वस्तुओ की तड़क-भड़क, और गवैये की विशुद्ध स्वर-सप्तक की बहुविध सृष्टि, इन सबका क्षणिक उल्लेख हमने किया। क्योंकि जो युवक निविष्ट मन से युवती के चपल कटाक्ष देख रहा है उसके हृदय मे उन कटाक्षो की मधुरता ही बाकी और और चीज़ो को स्फूर्ति दे रही है।

यह युवा गोविन्दलाल है—वह युवती रोहिणी है, यह घर गोविन्दलाल ने खरीदा है। यही वे लोग स्थायी है।

अकस्मात् रोहिणी का तबला बेसुरा बोला। उस्ताद जी के तानपूरे का तार कट गया, उनके गले मे लहरा लगा, गाना रुक गया, गोविन्दलाल के हाथ का उपन्यास गिर गया। उसी समय उस प्रमोद-गृह के द्वार से एक अपरिचित युवा भीतर पैठा। हम उसे पहचानते है—वह निशाकरदास है।

——

मा०—विपत्ति-समूह। पुलिस को किसी तरह सही सही पता लगा है कि आपके यहाँ एक चुराई नोट है।

ब्रह्मानन्द आसमान से गिरे। "वह क्या ? मेरे पास चुराई नोट ?"

मा०—मुमकिन, तुम ख़ुद चोर को न जानते होओ, विना जाने हुए नोट रख दी हो।

ब्र०—वह कैसे, महाशय, मुझे नोट कौन देगा ?

माधवीनाथ ने तब आवाज़ धीमी करके कहा, "मुझे कुल बात मालूम हो चुकी है, पुलिस को भी मालूम है। वास्तव में पुलिस के पास ही ये बातें सुनी हैं। चुराई नोट प्रसादपुर से आई है, वह देखो, एक पुलिस का सिपाही तुम्हारे लिए आकर खड़ा है। मैंने उसे कुछ देकर अभी रोक रक्खा है।"

माधवीनाथ ने तब पेड़ के नीचे विचरण करनेवाले, डण्डा लिये हुए, दाढ़ी मूछों से शोभित सिपाही की जलधर-जैसी कमनीय मूर्ति दिखलाई।

ब्रह्मानन्द थरथर काँपने लगे। माधवीनाथ के पैर पकड़कर रोते हुए कहा, "आप मेरी रक्षा कीजिए।"

मा०—डरो नहीं, अबके प्रसादपुर से किस किस नम्बर की नोटें मिली हैं, बतलाओ। पुलिस का आदमी हमारे पास नोट का नम्बर दे गया है। अगर उस नम्बर की नोट न होगी, तो डर क्या है ? नम्बर बदलते कितनी देर लगेगी ? एक बार प्रसादपुर का पत्र ले तो आओ—नोट का नम्बर देखें।

ब्रह्मानन्द जायँ किस तरह ? डरते थे—पेड़ के नीचे सिपाही खड़ा था।

माधवीनाथ ने कहा, "कोई डर नहीं, मैं साथ आदमी देता हूँ।" माधवीनाथ की आज्ञा के अनुसार एक दरबान ब्रह्मानन्द

के साथ गया। ब्रह्मानन्द रोहिणी का पत्र ले आये। उस पत्र मे माधवीनाथ जो जो कुछ खोज रहे थे, सब उन्हे मिला।

पत्र पढ़कर ब्रह्मानन्द को वापस करते हुए बोले, "इस नम्बर की नोट नहीं। कोई भय नहीं, तुम घर जाओ। हम सिपाही को विदा किये दे रहे है।"

ब्रह्मानन्द के जैसे मृत शरीर मे प्राण आये, वह लम्बी साँस खींच कर वहाँ से भगा।

माधवीनाथ इलाज के लिए लड़की को अपने घर ले गये। उसकी चिकित्सा के लिए योग्य चिकित्सक लगाकर स्वय कलकत्ता चले। भ्रमर ने बहुत रास्ता रोका—माधवीनाथ ने उधर कान नहीं दिया। "जल्द आ रहे है" कहकर लड़की को सान्त्वना दे गये।

कलकत्ते मे निशाकरदास नाम के माधवीनाथ के एक बडे आत्मीय थे। निशाकर माधवीनाथ से आठ-दस साल के छोटे थे। निशाकर कुछ करते नही—पैत्रिक सम्पत्ति है—सिर्फ कुछ कुछ गाने-बजाने की चर्चा करते है, कोई काम नहीं, इसलिए अक्सर पयटन किया करते है। माधवीनाथ ने आकर उनसे मुलाकात की। दूसरी दूसरी बातो के बाद निशाकर से पूछा, "क्यो जी, घूमने चलोगे ?

निशा०—कहाँ ?

माध०—जशोर।

निशा०—वहाँ क्यो ?

माध०—नील की कोठी खरीदेगे।

निशा०—चलो।

फिर आवश्यक तैयारियाँ करके दोनो मित्र दिन भर के अन्दर अन्दर जशोर के लिए रवाने हो गये। वहाँ से प्रसादपुर जायँगे।

पाँचवाँ परिच्छेद

देखो, धीरे धीरे शीर्णकाया चित्रा नदी वह रही है—किनारे पीपल, कदम्ब, आम, खजूर आदि असंख्य वृक्ष शोभित हैं, उपवन में कोयल, पपीहा, दोयल आदि बोल रहे हैं। पास गाँव नहीं। प्रसाद-पुर नाम का एक छोटा बाज़ार प्रायः कोस भर दूर है। यहाँ मनुष्यों का समागम नहीं, देखकर निःशङ्क चित्त से, पापाचरण का स्थान है, समझ कर, पहले एक नीलकर साहब ने यहाँ नील की एक कोठी बनाई थी। इस समय नीलकर और उसका ऐश्वर्य ध्वंसपुर को प्रयाण कर गया है—उसके अमीन, तगादेदार, नायब, गुमाश्ते यथायोग्य स्थानो मे अपने उपार्जित कर्मों का फल भोग रहे हैं। एक बङ्गाली ने वह जन-शून्य प्रान्तर-स्थित रम्य अट्टालिका ख़रीदकर उसे सजाया था। फूलो से, पत्थर की मूर्तियों से, आसनो से, दर्पणो से, चित्रो से गृह विचित्र हो गया था। उसके भीतर के दोमञ्ज़िले के बड़े कमरे में हम लोग चले। कमरे मे स्त्रियो के कुछ चित्र हैं—परन्तु कुछ सुरुचिविगर्हित है—अवर्णनीय। निर्मल सुकोमल आसन पर बैठा हुआ एक दाढ़ीवाला मुसलमान एक तम्बूरे के कान ऐंठ रहा है—पास बैठी हुई एक युवती ठन् ठन् करके दाये (तबले) मे उँगली मार रही है—साथ साथ हाथ के सोने के गहनों की झनकार हो रही है—पास की दीवार से लगे दो बड़े आईनो मे दोनो के बिम्ब भी वैसा ही कर रहे थे। पास के कमरे मे बैठे एक युवा पुरुष उपन्यास पढ़ रहे हैं और बीच के खुले दरवाज़े से युवती का काम देख रहे हैं।

... के कान ऐंठते ऐंठते दाढ़ीधर तार में उँगली मार रहा था। तार की मेव-मेंव और तबले की ठन्-ठन् उस्ताद जी की विवेचना मे मिल गई, तब वे उस मूछ और दाढ़ी के अँधेरे के भीतर से कुछ तुषारधवल-दन्त निर्गत करके वृषभदुर्लभ कण्ठस्वर निकालने लगे।

स्वर निकालते निकालते वे तुपारधवल-दन्त तरह तरह की खींचतान मे बदलने लगे और भौरे-सी काली दाढ़ी की राशि उसका अनुवर्तन करती हुई तरह तरह का तमाशा करने लगी। उस खींचतान से ताड़ित उस युवती ने भी वृषभ-दुर्लभ कण्ठ से अपना कोमल गला मिलाया और गाने लगी—मोटी और बारीक आवाज़ से एक प्रकार सुनहले-रुपहले तौर का गाना होने लगा।

यहीं आखिरी पर्दा गिराने की इच्छा होती है। जो अपवित्र है, अदर्शनीय है, वह हम नही दिखायेगे। जिसके कहे बिना काम नहीं चलता, वही कहेगे। लेकिन फिर भी उस अशोक-वकुल-कुरवक-कुटज-कुञ्ज मे भ्रमर-गुञ्जन, कोकिल-कूजन, उस छोटी नदी की तरङ्ग पर तैरते-चलते राजहसो का कलनाद, जुही, चमेली, वेला, मधु-मालती आदि फूलो का सौरभ, उस कमरे मे नीले शीशे के भीतर से आती धूप की अपूर्व माधुरी, स्फटिक आदि से निर्मित उस चाँदी के पुष्पाधार पर अच्छी तरह रक्खे गुलदस्ते की शोभा, कमरे को भड़कीला बनानेवाली उन वस्तुओ को तड़क-भड़क, और गवैये की विशुद्ध स्वर-सप्तक की बहुविध सृष्टि, इन सबका क्षणिक उल्लेख हमने किया। क्योंकि जो युवक निविष्ट मन से युवती के चपल कटाक्ष देख रहा है उसके हृदय मे उन कटाक्षो की मधुरता ही बाकी और और चीजो को स्फूर्ति दे रही है।

यह युवा गोविन्दलाल है—वह युवती रोहिणी है, यह घर गोविन्दलाल ने खरीदा है। यही वे लोग स्थायी है।

अकस्मात् रोहिणी का तबला बेसुरा बोला। उस्ताद जी के तानपूरे का तार कट गया, उनके गले मे लहरा लगा, गाना रुक गया, गोविन्दलाल के हाथ का उपन्यास गिर गया। उसी समय उस प्रमोद-गृह के द्वार से एक अपरिचित युवा भीतर पैठा। हम उसे पहचानते है—वह निशाकरदास है।

——

छठा परिच्छेद

अट्टालिका की दूसरी मञ्ज़िल पर रोहिणी रहती है—आधी पर्दानशीन। नीचे की मञ्जिल मे नौकर रहते है। उस एकान्त मे प्राय: कभी कोई गोविन्दलाल से मिलने नहीं जाता, इसलिए वहाँ बाहर बैठके की आवश्यकता नहीं थी। अगर कभी किसी समय कोई दूकानदार या दूसरा कोई गया, ऊपर बाबू के पास खबर जाती थी, बाबू नीचे उतर कर उससे मुलाकात कर जाते थे, इसलिए बाबू के बैठने के लिए नीचे एक कमरा था।

नीचे दरवाजे के पास खडे होकर निशाकरदास ने आवाज़ दी, "कौन हो जी यहाँ ?"

गोविन्दलाल के सोना और रूपा नाम के दो नौकर थे। आदमी का गला सुन कर दोनो दरवाज़े के पास आये और निशाकर को देखकर विस्मित हुए—निशाकर को देखते ही, वे समझे, भले आदमी है। पहनावा निशाकर कुछ भड़कीला पहन कर गये थे। वैसे आदमी ने कभी वह डेहरी नही नाँघी। देखकर दोनो नौकर एक दूसरे का मुँह ताकने लगे। सोना ने पूछा, "आप किसे खोजते है ?"

निशाकर—तुम्हीं लोगो को। बाबू को खबर दो कि एक भले आदमी मुलाकात करने आये है ?

सोना—क्या नाम बतलाऊँगा ?

निशा०—नाम की जरूरत क्या है ? एक भले आदमी कहना।

नौकर जानते थे कि आजकल बाबू किसी भले आदमी से मुलाकात नही करते—वैसा स्वभाव ही नहीं। अस्तु नौकर खबर देने के बड़े इच्छुक नहीं थे। सोना इधर-उधर करने लगा। रूपा ने कहा, "आप फ़िजूल के लिए आये है, बाबू किसी से मुलाकात नहीं करते।"

निशा०—तो फिर तुम लोग रहो, हम विना खवर के ही ऊपर जा रहे है।

नौकर आफ़त मे पड़े। कहा, "नही, महाशय, हमारी नौकरी चली जायगी।"

निशाकर ने तव एक रुपया निकाल कर कहा, "जो खवर देगा, उसके लिए यह रुपया है।"

सोना सोचने लगा,—रूपा चील की तरह झपट्टा मार कर निशाकर के हाथ से रुपया लेकर ऊपर खवर देने दौड़ा।

घर को घेर कर जो फुलवाड़ी है, वह वड़ी मनोहर है। निशाकर ने सोना से कहा, "हम इस फुलवाडी मे टहल रहे है, एतराज न करना; जव आना, हमे वहाँ से पुकार लेना।" यह कह कर निशाकर ने सोना के हाथ मे भी एक रुपया रक्खा।

रूपा जव वावू के पास था, तव किसी काम के कारण वावू को अवकाश नहीं था, नौकर उन्हे निशाकर की खवर नहीं दे सका। इधर वगीचे मे टहलते टहलते निशाकर ने एक वार निगाह उठाई, देखा, एक परमा सुन्दरी खिड़की पर खड़ी हुई उन्हे देख रही है।

निशाकर को देखकर रोहिणी ने सोचा, "यह कौन है? देखने पर जान पड़ता है, इस देश का आदमी नहीं, वेशभूषा और तौर-तरीके से मालूम देता है, वड़ा आदमी है। देखने मे सुन्दर भी है। लेकिन क्या गोविन्दलाल से भी है? नहीं, ऐसा नही। गोविन्दलाल का रङ्ग गोरा है, लेकिन इसका मुँह और आँखे अच्छी है, खास तौर से आँखे। अहा! कैसा मुँह है! यह कहाँ से आया? हरिद्राग्राम का आदमी तो नही है—वहाँ के तो सभी को पहचानती हूँ। इससे दो वाते नही की जा सकती? हानि क्या है? मै कभी गोविन्दलाल से विश्वासघात तो करूँगी नहीं।

रोहिणी इस तरह सोच रही थी, ऐसे समय निशाकर की आँखे उठते ही चार आँखे हो गई। आँखो मे कोई वातचीत हुई या

नहीं, हम नहीं कह सकते, जानने पर भी कहने की इच्छा नहीं; हमने सुना है, ऐसी बातचीत हुआ करती है।

ऐसे समय रूपा ने बाबू का अवकाश देखकर बाबू से कहा, "एक भले आदमी मुलाकात करने आये है।"

बाबू ने पूछा, "कहाँ से आये है ?

रूपा—यह मुझे नहीं मालूम।

बाबू—तो बिना पूछे खबर देने क्यो आया है ?

रूपा ने देखा, बेवकूफ बनना पड़ रहा है। हाजिरजबाबी से कहा, "मैने पूछा था। उन्होने कहा, बाबू से ही कहेगे।"

बाबू ने कहा, "तो जाकर कह, मुलाकात नहीं होगी।"

इधर निशाकर ने देर देखकर सन्देह किया, सोचा कि गोविन्द-लाल शायद मुलाकात करने से इनकार कर रहा है। परन्तु दुष्कृतकारी से सभ्यता भी क्यो करूँ ? मै ख़ुद ऊपर क्यो न चला जाऊँ ?

इस तरह विचार लड़ा कर नौकर के लौटने की प्रतीक्षा किये बिना ही निशाकर घर के भीतर फिर घुसे। देखा, सोना-रूपा कोई नीचे नहीं। तब वे बिना उद्वेग के जीने पर चढ़कर जहाँ गोविन्द-लाल, रोहिणी और दानिश खाँ गवैये थे, वहाँ पहुँचे। उन्हे देखकर रूपा ने दिखला दिया कि यही बाबू मुलाकात करना चाहते थे।

गोविन्दलाल बडे नाराज हुए। परन्तु देखा, सभ्य आदमी है। पूछा, "आप कौन है ?"

निशा०—मेरा नाम रासविहारी दे है।

गोविन्द०—वास ?

निशा०—वराहनगर।

निशाकर जम कर बैठे। समझ गये थे कि गोविन्दलाल बैठने के लिए नहीं कहेगे।

गोविन्द०—आप किसे खोजते है ?

शा०—आपको।

गोविन्द०—आप मेरे घर मे जबरदस्ती न घुसकर अगर थोड़ी-सी प्रतीक्षा करते तो नौकर की जबानी मालूम करते कि मुझे मुलाकात का अवकाश नहीं।

निशा०—अवकाश तो काफी देख रहा हूँ। घुड़कियो और भभकियो से उठ जानेवाला आदमी होता तो आपके पास न आता। मै जब आया हूँ, तब मेरी बात सुनने पर ही, आपत्ति टल जायगी।

गोविन्द०—न सुनूँ, यही मेरी इच्छा है, लेकिन दो बातो मे अगर समाप्त कर सके, तो कह कर बिदा हो।

निशा०—दो बातो मे ही कहूँगा। आपकी स्त्री श्रीमती भ्रमर अपनी जायदाद ठेके पर उठायेगी।

दानिश खॉ गवैया तानपूरे मे नया तार चढ़ा रहा था। वह एक हाथ से तार चढ़ाने लगा, दूसरे हाथ से उँगली गिनी और कहा, एक बात हुई।

निशा०—मै उसका ठेका लूँगा।

दानिश खॉ ने उँगली गिनकर कहा, "दो बाते हुई।"

निशा०—मै इसके लिए आपके हरिद्राग्रामवाले मकान मे गया था।

दानिश खॉ ने कहा, "दो बातो से बढ़कर तीन बाते हुई?"

निशा०—उस्ताद जी, सुअर गिन रहे है क्या?

उस्ताद ने आँखे लाल करके कहा, "इस बेतमीज़ को यहॉ से निकालिए।"

परन्तु बाबू साहब उस समय अनमने थे, बोले नहीं।

निशाकर कहने लगे, "आपकी स्त्री ने मुझे जमीन का ठेका देना मञ्जूर किया है, लेकिन आपकी अनुमति पर है। उन्हे आपका पता भी नहीं मालूम, खत भी नहीं लिखना चाहती, इसलिए आपका मतलब मालूम करने का भार मुझ पर पड़ा है। बड़ी खोज के बाद आपका पता मालूम किया, आपकी आज्ञा लेने आया हूँ।"

गोविन्दलाल ने कोई जवाब नहीं दिया, बहुत ही अन्यमनस्क है। बहुत दिन बाद उन्होंने भ्रमर की बात सुनी—उनकी वही भ्रमर! प्रायः दो साल हो गये।

निशाकर कुछ कुछ समझे। फिर कहा, "आपकी अगर सम्मति है, तो एक सतर लिख दीजिए कि आपको कोई एतराज नहीं; तो मैं यहाँ से उठ जाऊँ।"

गोविन्दलाल ने कोई जवाब नहीं दिया। निशाकर समझे, फिर कहना पड़ा, फिर कुल बातें समझाकर कहीं, इस बार चित्त संयत करके गोविन्दलाल ने कुल बातें सुनीं। निशाकर की कुल बातें झूठी हैं, यह पाठक समझे होंगे। परन्तु गोविन्दलाल ऐसा नहीं समझे। पहले का उग्रभाव छोड़कर बोले, "मेरी अनुमति लेना अनावश्यक है। सम्पत्ति मेरी स्त्री की है, मेरी नहीं, शायद यह आपको मालूम है। उनकी जिन्हें इच्छा, ठेका देंगी, मेरा कोई विधिनिषेध इसमें नहीं। मैं कुछ लिखूँगा भी नहीं। जान पड़ता है, अब आप मुझे छुटकारा देंगे।"

लाचार निशाकर को उठना पड़ा। वे नीचे उतर गये। निशाकर के जाने पर गोविन्दलाल ने दानिश खाँ से कहा, "कुछ गाइए।"

मालिक की आज्ञा मिलने पर तानपूरे में स्वर बाँधकर दानिश खाँ ने पूछा, "क्या गाऊँ?"

"जो जी में आये" कहकर गोविन्दलाल ने तबला लिया। गोविन्दलाल पहले भी कुछ कुछ बजाना जानते थे। अब अच्छा बजाना सीखा था। परन्तु आज दानिश खाँ के साथ सङ्गत नहीं हुई। कुल तालें कट कट जाने लगीं। दानिश खाँ ने परेशान होकर तानपूरा रखकर गाना बन्द करते हुए कहा, "आज मैं थक रहा हूँ।" तब गोविन्दलाल ने एक सितार लेकर बजाने की कोशिश की, लेकिन गतें भूल भूल जाने लगीं। सितार रखकर उपन्यास पढ़ने लगे। मगर जो कुछ पढ़ते थे, उसका मतलब नहीं समझ

मे आता था। तब किताब डालकर गोविन्दलाल शयन-गृह मे गये। रोहिणी को नही देखा, परन्तु सोना नौकर पास था। दरवाजे से गोविन्दलाल ने सोना से कहा, हम अभी कुछ सोयेगे, अपने आप न उठे तो जैसे कोई उठाये नही।"

यह कहकर गोविन्दलाल ने शयन-गृह का द्वार बन्द कर लिया। सन्ध्या प्राय समाप्त होने को थी।

द्वार बन्द करके गोविन्दलाल सोये नही। पलॅग पर बैठकर दोनो हाथो मुॅह ढॅके हुए रोने लगे।

वे क्यों रोये, यह हमे नही मालूम। भ्रमर के लिए रोये या अपने लिए, यह हम कह नही सकते, जान पड़ता है, दोनो के लिए।

रोना छोड़कर हमे तो गोविन्दलाल के लिए दूसरा उपाय नही देख पड़ता। भ्रमर के लिए रोने का रास्ता है, परन्तु भ्रमर के पास लौट जाने का उपाय नही। हरिद्राग्राम मे अब मुॅह दिखानेवाली बात नहीं रही। हरिद्राग्राम के रास्ते पर कॉटे बिछ गये है। रोना छोड़कर और उपाय नहीं रहा।

सातवॉ परिच्छेद

जब निशाकर बड़े कमरे मे आकर बैठे, तब लाचार होकर रोहिणी को बगलवाले छोटे कमरे मे जाना पड़ा। मगर सिर्फ ऑखो की ओट हुई—कानो की नहीं। बातचीत जो हुई, सब रोहिणी ने कान लगाकर सुनी और दरवाजे का पर्दा कुछ हटाकर निशाकर को देखती रही। निशाकर ने भी देखा, पर्दे की आड़ से परवल की फॉको-सी ऑखे उन्हे देख रही है।

बात सुनकर सोना खानसामा गल गया, कहा, "क्या करूँ ? यहाँ कहाँ नौकरी मिलती है ?"

निशा०—नौकरी की क्या चिन्ता, है ? हमारे मुल्क चलो तो तुम्हें लोक लें। पाँच, सात, दस रुपये सीधे सीधे पा जाओगे।

सोना—दया करके अगर साथ ले चलें।

निशा०—क्या ले चलने पर चलोगे ? ऐसे मालिक की नौकरी छोड़ दोगे ?

सोना—मालिक बुरे नहीं, लेकिन मालकिन बड़ी हरामज़ादी है।

निशा०—हमें तो हाथो हाथ इसका सुबूत मिला है तो, हमारे साथ चलने का तुम्हारा इरादा पक्का है ?

सोना—हाँ, पक्का है।

निशा०—अच्छा, चलते समय मालिक का एक उपकार करते चलो मगर बड़ी सावधानी का काम है, कर सकोगे ?

सोना—अच्छा काम होगा तो क्यो नहीं कर सकूँगा ?

निशा०—तुम्हारे मालिक के हक मे अच्छा है, मालकिन के हक में बहुत बुरा।

सोना—तो कहिए, देर न कीजिए, इसके लिए मै राजी हूँ।

निशा०—तुम्हारी मालकिन ने हमारे पास कहला भेजा है, चित्रा के पक्के घाट पर, बैठे रहने के लिए, रात मे छिपकर हमसे मिलेगी। समझे ? हमने मंजूर कर लिया है। हमारा मतलब है, तुम्हारे मालिक की आँखे खोल दे। तुम चुपचाप यह बात अपने मालिक से कह आ सकते हो ?

सोना—अभी, यह पाप मिटने से ही निस्तार है।

निशा०—अभी नहीं, अभी हम घाट में चलकर बैठते है। तुम होशियार रहो। जब देखोगे, मालकिन घाट की तरफ चलीं, तब

चलकर मालिक से कह देना। रूपा कुछ मालूम न कर सके। फिर हमसे मिलना।

"जो हुक्म" कहकर सोना ने निशाकर के पैरो की धूल ली। तव निशाकर झूमते हुए गजेन्द्र की चाल से चित्रा के किनारे के सोपान पर, चलकर बैठे। अँधेरे मे नक्षत्रो की छाया से प्रदीप्त चित्रा का जल चुपचाप वहा जा रहा है। चारो ओर स्यार कुत्ते आदि वहुविध रव कर रहे है। कही दूर की नाव पर बैठा हुआ धीवर ऊँचे स्वर से श्यामाविषयक गीत गा रहा है। निशाकर वह गीत सुन रहे है और गोविन्दलाल के रहनेवाले कमरे की खिड़कियो से निकलता हुआ दीप का उज्जल प्रकाश देख रहे है और मन-ही-मन सोच रहे है, "मै क्या नृशंस हूँ। एक स्त्री को मिट्टी मे मिलाने के लिए कितने दाव-पेच कर रहा हूँ। लेकिन नृशसता भी क्या है? दुष्ट का दमन अवश्य किया जाना चाहिए। जव मित्र की लड़की की जान बचाने के लिए यह काम करने के लिए मित्र से अङ्गीकार किया है, तव अवश्य करूँगा। परन्तु मेरा मन इसमे प्रसन्न नही। रोहिणी पापीयसी है, पाप का दण्ड दूँगा, पाप का बहाव रोकूँगा, इसमे अप्रसाद भी क्यो? कह नही सकता, जान पडता है, सीधा रास्ता चलने पर इतना न सोचना पड़ता। टेढ़े रास्ते से चला हूँ, इसीलिए इतना संङ्कोच हो रहा है। और पाप-पुण्य का दण्ड-पुरस्कार देने-वाला मै कौन हूँ? मेरे पाप-पुण्य का जो दण्ड-पुरस्कार देगे, वे रोहिणी के भी विचारक है। कह नहीं सकता, मुमकिन, उन्होंने मुझे इस कार्य मे नियोजित किया हो। क्या मालूम—

"त्वया हृषीकेश हृदिस्थितेन
यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि।"

यह विचार करते करते रात का एक पहर वीत गया। तव निशाकर ने देखा, नि शब्द चरण-क्षेप से रोहिणी पास आकर खड़ी

रूपा ने देखा, पाँच रुपये हाथ से निकले जा रहे है। कहा, "अच्छा, यहाँ न वैठिए, नहीं सही, क्या वाहर कुछ दूर पर नहीं वैठ सकते ?"

निशा०—हम भी यही वात सोच रहे थे। आते वक्त, तुम्हारी कोठी के पास नदी के किनारे एक पक्का घाट है, उसके पास मौलसिरी के दो पेड है, देख आये है। वह जगह पहचानते हो ?

रूपा—जी, हाँ।

निशा०—हम वहाँ चल कर वैठते है। शाम हो गई है—रात होने पर वहाँ वैठने मे किसी की नजर एकाएक नहीं पडेगी। तुम्हारी मालकिन साहवा अगर वहाँ जा सके, तो कुल हाल उन्हे मिल सकता है। ऐसा-वैसा देखा तो भग कर हम अपनी जान भी वचा लेगे। घर मे डाल कर हमे कुत्ते की मौत मारे, इसमे हमारी राय नही।

लाचार, रूपा नौकर ने, रोहिणी के पास जाकर, निशाकर ने जैसा कहा, वैसा निवेदन किया। इस समय रोहिणी के मन का भाव क्या है, यह हम नही कह सकते। जव आदमी अपने मन का भाव खुद नहीं समझ पाता, तव हम किस तरह कहेगे कि रोहिणी के मन का भाव यह है। रोहिणी ब्रह्मानन्द को इतना प्यार करती थी कि उनकी खवर लिये विना दिग्ज्ञान-शून्य हो जायगी, ऐसा हमे नहीं मालूम। मुमकिन, और भी कुछ रहा हो। कुछ नज़रेवाजी, कुछ तोल-ताल हुई थी। रोहिणी ने देखा था कि निशाकर रूपवान् है—आँखे आम की फाँके है। रोहिणी ने देखा था कि मनुष्यो मे, मनुष्यत्व मे, निशाकर वढ़ा-चढ़ा है। रोहिणी के मन मे दृढ़ सङ्कल्प था कि मै गोविन्दलाल से विश्वास-घात नहीं करूँगी—परन्तु विश्वास-घात एक वात है, यह एक और वात। शायद उस महा पापिष्ठा ने सोचा था, "चकराया हुआ मृग देखने पर कौन व्याध व्यवसायी होकर उसे तीर से नहीं वेधेगा ?" सोचा था, "नारी होकर, जीतने लायक आदमी देखने पर कौन नारी उसे जीतने की इच्छा नहीं

करेगी ?" बाघ शिकार करता है, लेकिन कुल शिकार नहीं खाता। स्त्री भी पुरुष को जीतती है, लेकिन विजय-पताका उड़ाने के लिए। बहुतेरे मछली पकडते हैं, सिर्फ मछली पकड़ने के लिए, मछली खाते नहीं, दे देते हैं। बहुत-से लोग चिडिया मारते हैं, सिर्फ मारने के लिए, मार कर डाल देते हैं। शिकार सिर्फ शिकार के लिए है, खाने के लिए नहीं। नहीं मालूम, इसमे क्या रस है। रोहिणी ने सोचा होगा, "यदि यह बड़ी बड़ी आँखोंवाला मृग इस प्रसादपुर के वन मे आ पडा है, तो इसे शरविद्ध करके क्यो न छोड दूँ ?" नहीं मालूम, इस पापीयसी के पापी चित्त मे क्या आया था। रोहिणी ने मञ्जूर किया कि प्रदोप के समय अवकाश पाने पर, छिपकर, अकेली, चित्रा के पक्के घाट पर निशाकर से चाचा की खबर मालूम करने जायगी।

रूपा ने आकर निशाकर से कहा। निशाकर ने सुना, धीरे-धीरे हर्षोत्फुल्ल मन से उठे।

आठवाँ परिच्छेद

रूपा के हट जाने पर निशाकर ने सोना को बुलाकर कहा, "तुम लोग बाबू के पास कितने दिन से हो ?"

सोना—यही—आप यहाँ जितने दिन से आये हैं, उतने दिन से।

निशा०—तो थोडे ही दिन हुए, पाते क्या हो ?

सोना—तीन रुपया महीना, ख़ुराक और कपड़ा।

निशा०—इतने कम वेतन पर तुम्हारे जैसे खानसामा को पूरा पडता है ?

रोहिणी ने सुना, निशाकर अथवा रासविहारी हरिद्राग्राम स आये है। रूपा नौकर भी रोहिणी की तरह कुल बाते खड़ा हुआ सुन रहा था। निशाकर के उठ जाने पर ही रोहिणी ने पर्दे की बगल से मुँह निकालकर उँगली के इशारे से रूपा को बुलाया। रूपा के पास आने पर उसके कान मे कहा, "जो कुछ कहूँ तू कर सकेगा? बाबू से कुल बाते छिपानी होगी। जो कुछ करेगा, वह अगर बाबू कुछ मालूम न कर सकेगे तो तुझे पाँच रुपये बख्शिश दूँगी।"

रूपा ने मन मे सोचा, "आज न जाने किसका मुँह सुबह उठकर देखा था—आज तो, देख रहा हूँ, रुपया कमाने का दिन है, गरीब आदमी को दो पैसे आये तभी अच्छा है।" खुलकर कहा, "जो कुछ कहेगी, वही कर सकूँगा। क्या हुक्म देती है?"

रो०—उस बाबू के साथ उतर जा, वे मेरे पिता जी के मुल्क से आये है। वहाँ की कोई खबर मुझे कभी नहीं मिलती। इसके लिए कितना रोती हूँ। अगर देश से एक आदमी आया है, तो उससे अपने आदमियो की कुछ बाते—कुछ हाल मालूम कर लूँ। बाबू ने नाराज होकर उसे उठा दिया। तू जा, उसे बैठाल। ऐसी जगह बैठाल, जैसे बाबू नीचे जाने पर देख न पाये। कोई दूसरा न देखे। कुछ एकान्त मिलने पर ही मै जाऊँगी। अगर बैठना न चाहे तो आरजू-मिन्नत करना।"

रूपा को बख्शिश की बू मिली है—"जो हुक्म" कहकर दौड़ा।

निशाकर किस अभिप्राय से गोविन्दलाल को छलने आये थे, हम नही कह सकते। वे नीचे उतरकर जैसे आचरण कर रहे थे, कोई बुद्धिमान् अगर देखता तो उन पर बहुत अविश्वास करता। घर मे घुसने का दरवाजा, जञ्जीर, कब्जा आदि बड़े गौर से देख रहे थे। ऐसे समय रूपा खानसामा आकर हाजिर हुआ।

रूपा ने कहा, "क्या तम्बाकू पीजिएगा ?"

निशा०—बाबू ने तो पूछा नहीं, अब नौकर से लेकर क्या पिये ?

रूपा—जी, सो बात नहीं, एक बात एकान्त की है, जरा एकान्त मे आइए।

रूपा—निशाकर को साथ लेकर अपने निर्जन कमरे मे ले गया। निशाकर भी बिना उज्रमाजरे के चले गये। वहाँ निशाकर को बैठालकर जो जो कुछ रोहिणी ने कहा था, रूपा ने कहा।

निशाकर को हाथ बढ़ाकर आकाश का चाँद मिला। अपने अभिप्राय की सिद्धि का बड़ा सहज उपाय उन्होंने देखा। कहा, "बच्चू, सुनो, तुम्हारे मालिक ने तो हमे खदेड दिया है, हम उनके मकान मे छिपकर रहे किस तरह ?"

रूपा—जी, उन्हे कुछ मालूम नही हो पायेगा। इस कमरे मे वे कभी आते नहीं।

निशा०—न आये, लेकिन जब तुम्हारी मालकिन नीचे आयेगी, उस समय यदि तुम्हारे बाबू सोचे, कहाँ गई, देखूँ ? यदि ऐसा सोचकर पीछे पीछे आये, या किसी तरह अगर हमारे पास तुम्हारी मालकिन साहबा को देख ले, तो हमारी दशा क्या होगी ?

रूपा—चुप रहा। निशाकर कहने लगे, "इस मैदान के बीच, घर मे डालकर, हमारी जान लेकर इस बगीचे मे गाड़ रखने पर न माँ पुकारने के लिए कोई है, न बाप पुकारने के लिए। तब तुम्हीं हमे दो लाठी जमाओगे—इसलिए ऐसे काम मे हम नहीं है। अपनी मालकिन को समझाकर कहो कि यह उनसे नहीं होगा,—एक बात और कहना। उनके चाचा ने कुछ बड़ी वज़नदार बाते उनसे कहने के लिए हमसे कही थीं। तुम्हारी मालकिन साहबा से वे बाते कहने के लिए हम बडे उतावले थे, मगर तुम्हारे बाबू ने हमे हटा ही दिया। हमारा कहना न हुआ, अब हम चले।"

वात सुनकर सोना खानसामा गल गया, कहा, "क्या करूँ ? यहाँ कहाँ नौकरी मिलती है ?"

निशा०—नौकरी की क्या चिन्ता, है ? हमारे मुल्क चलो तो तुम्हे लोक ले। पाँच, सात, दस रुपये सीधे सीधे पा जाओगे।

सोना—दया करके अगर साथ ले चले।

निशा०—क्या ले चलने पर चलोगे ? ऐसे मालिक की नौकरी छोड़ दोगे ?

सोना—मालिक बुरे नहीं, लेकिन मालकिन बड़ी हरामजादी है।

निशा०—हमें तो हाथो हाथ इसका सुबूत मिला है तो, हमारे साथ चलने का तुम्हारा इरादा पक्का है ?

सोना—हाँ, पक्का है।

निशा०—अच्छा, चलते समय मालिक का एक उपकार करते चलो मगर बड़ी सावधानी का काम है, कर सकोगे ?

सोना—अच्छा काम होगा तो क्यो नहीं कर सकूँगा ?

निशा०—तुम्हारे मालिक के हक मे अच्छा है, मालकिन के हक मे बहुत बुरा।

सोना—तो कहिए, देर न कीजिए, इसके लिए मै राजी हूँ।

निशा०—तुम्हारी मालकिन ने हमारे पास कहला भेजा है, चित्रा के पक्के घाट पर, बैठे रहने के लिए, रात मे छिपकर हमसे मिलेगी। समझे ? हमने मंजूर कर लिया है। हमारा मतलब है, तुम्हारे मालिक की आँखे खोल दे। तुम चुपचाप यह बात अपने मालिक से कह आ सकते हो ?

सोना—अभी, यह पाप मिटने से ही निस्तार है।

निशा०—अभी नहीं, अभी हम घाट मे चलकर बैठते है। तुम होशियार रहो। जब देखोगे, मालकिन घाट की तरफ चलीं, तब

चलकर मालिक से कह देना। रूपा कुछ मालूम न कर सके। फिर हमसे मिलना।

"जो हुक्म" कहकर सोना ने निशाकर के पैरो की धूल ली। तब निशाकर भूमते हुए गजेन्द्र की चाल से चित्रा के किनारे के सोपान पर, चलकर बैठे। अँधेरे मे नक्षत्रो की छाया से प्रदीप्त चित्रा का जल चुपचाप बहा जा रहा है। चारो ओर स्यार कुत्ते आदि बहुविध रव कर रहे है। कही दूर की नाव पर बैठा हुआ धीवर ऊँचे स्वर से श्यामाविषयक गीत गा रहा है। निशाकर वह गीत सुन रहे है और गोविन्दलाल के रहनेवाले कमरे की खिड़कियो से निकलता हुआ दीप का उज्जल प्रकाश देख रहे है और मन-ही-मन सोच रहे है, "मै क्या नृशस हूँ। एक स्त्री को मिट्टी मे मिलाने के लिए कितने दाव-पेच कर रहा हूँ। लेकिन नृशसता भी क्या है? दुष्ट का दमन अवश्य किया जाना चाहिए। जब मित्र की लड़की की जान बचाने के लिए यह काम करने के लिए मित्र से अङ्गीकार किया है, तब अवश्य करूँगा। परन्तु मेरा मन इसमे प्रसन्न नही। रोहिणी पापीयसी है, पाप का दण्ड दूँगा, पाप का बहाव रोकूँगा, इसमे अप्रसाद भी क्यो? कह नहीं सकता, जान पडता है, सीधा रास्ता चलने पर इतना न सोचना पडता। टेढ़े रास्ते से चला हूँ, इसीलिए इतना सङ्कोच हो रहा है। और पाप-पुण्य का दण्ड-पुरस्कार देने-वाला मै कौन हूँ? मेरे पाप-पुण्य का जो दण्ड-पुरस्कार देगे, वे रोहिणी के भी विचारक है। कह नहीं सकता, मुमकिन, उन्होंने मुझे इस कार्य मे नियोजित किया हो। क्या मालूम—

"त्वया हृषीकेश हृदिस्थितेन
यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि।"

यह विचार करते करते रात का एक पहर बीत गया। तब निशाकर ने देखा, नि शब्द चरण-क्षेप से रोहिणी पास आकर खड़ी

हुई। निश्चय को और भी दृढ़ कर लेने के लिए निशाकर ने पूछा, "कौन हो ?"

रोहिणी ने भी निश्चय को दृढ़ कर लेने के लिए पूछा, "तुम कौन हो ?"

निशाकर ने कहा, "मै रासविहारी हूँ।"

रोहिणी ने कहा, "मै रोहिणी हूँ।"

निशा०—इतनी रात क्यो हुई ?

रोहिणी—ज़रा देखे-सुने बिना तो आ नहीं सकती। क्या मालूम, कौन कहाँ से देख लेगा। लेकिन तुम्हें बड़ी तकलीफ़ हुई।

निशा०—तकलीफ हो, मन-ही-मन डर रहा था कि तुम शायद भूल गई'।

रोहिणी—मै अगर भूलनेवाली होती तो मेरी दशा ऐसी क्यो होती ? एक आदमी को न भूल सकने के कारण इस देश मे आई हूँ, और आज तुम्हे न भूल सकने के कारण यहाँ आई हूँ।

यह बात कह रही थी, ऐसे समय पीछे से किसी ने रोहिणी का गला पकड़कर दबाया। चौंककर रोहिणी ने पूछा, "कौन है रे!"

गम्भीर स्वर से किसी ने जवाब दिया, "तुम्हारा काल।"

रोहिणी पहचान गई कि गोविन्दलाल है। तब आसन्न विपत्ति समझकर, चारो तरफ अँधेरा देखकर, भय-विकम्पित स्वर से कहा, "छोड़ो, छोड़ो, मै बुरे मतलब से नहीं आई। मै जिस कारण आई हूँ, इस बाबू से न हो पूछो।"

यह कहकर रोहिणी ने जहाँ निशाकर बैठा था, उस जगह उँगली उठाकर दिखाया। फिर देखा, वहाँ कोई नहीं। गोविन्दलाल को देखकर निशाकर पलक मारते कहीं गायब हो गया है। रोहिणी विस्मित होकर बोली, "कहाँ, कोई भी तो नहीं।"

गोविन्दलाल ने कहा, "यहाँ कोई नहीं, हमारे साथ घर चलो।"

रोहिणी विषण्ण चित्त से गोविन्दलाल के साथ घर लौटी।

नवाँ परिच्छेद

घर लौटकर गोविन्दलाल ने नौकरो को मना किया, "कोई ऊपर न आना।"

उस्ताद जी डेरे गये थे।

रोहिणी को लेकर एकान्त शयनकक्ष मे प्रवेश करके गोविन्दलाल ने द्वार बन्द किया, रोहिणी सामने नदी के बहाव से बेत की तरह खड़ी कॉपने लगी। गोविन्दलाल ने मधुर स्वर से कहा, "रोहिणी!"

रोहिणी ने कहा, "क्या?"

गो०—तुमसे कुछ बाते हैं।

रो०—क्या?

गो०—तुम मेरी कौन हो?

रो०—कोई नहीं, जितने दिन रखिएगा, उतने दिन दासी हूँ, नहीं तो कोई नहीं।

गो०—पैर छोड़ कर तुम्हे सर पर रक्खा था। राजा का जैसा ऐश्वर्य, राजा से अधिक सम्पदा, निष्कलङ्क चरित्र, अत्याज्य धर्म, सब तुम्हारे लिए मैने छोड़ा था; तुम क्या हो रोहिणी, जो तुम्हारे लिए यह सब छोड़कर मै वनवासी हुआ?—तुम क्या हो रोहिणी, जो तुम्हारे लिए भ्रमर,—ससार मे अतुल, चिन्ता मे सुख, सुख मे अतृप्ति, दु:ख मे अमृत जो भ्रमर है, उसे छोड़ा?

यह कहकर गोविन्दलाल दु:ख और क्रोध का वेग सँभाल नहीं सके, रोहिणी को लात मारी।

रोहिणी बैठ गई। कुछ बोली नहीं। रोने लगी। परन्तु आँसू गोविन्दलाल की नज़र मे नहीं पड़े।

गोविन्दलाल ने कहा, "रोहिणी, खड़ी होओ।" रोहिणी खड़ी हुई।

गो०—तुम एक बार मरने चली थीं, क्या फिर मरने की हिम्मत है ?

रोहिणी—तब मरने की इच्छा कर रही थी, बड़े कातर स्वर से बोली, "अब फिर क्यो नहीं मरना चाहूँगी ? भाग्य मे जो था, हुआ ।"

गो०—तो खड़ी रहो, हिलो नहीं ।

रोहिणी खड़ी रही ।

गोविन्दलाल ने पिस्तौल का बाक्स खोला, पिस्तौल निकाली, पिस्तौल भरी थी । भरी ही रहती थी ।

पिस्तौल लेकर रोहिणी के सामने लगाकर गोविन्दलाल ने पूछा, "क्यो, मर सकोगी ?"

रोहिणी सोचने लगी । जिस दिन अनायास, अक्लेश, वारुणी के जल मे डूब मरने गई थी, वह दिन आज रोहिणी भूली । वह दुःख नहीं, इसलिए वह साहस भी नही । सोचा, मरूँगी क्यो ? न हो ये छोड़ देगे, छोड़ दे । इन्हे कभी भूलूँगी नहीं, लेकिन इसलिए मरूँगी क्यों ?

रोहिणी ने कहा, "मरूँगी नहीं, मारिए नहीं, पैरो मे जगह न दीजिए तो विदा दीजिए ।

गो०—देता हूँ ।

यह कहकर गोविन्दलाल ने पिस्तौल सीधी करके रोहिणी के माथे का निशाना साधा ।

रोहिणी रो उठी । कहा, "मारो नहीं, मारो नहीं । मेरी नई उम्र, नया सुख है । मै तुम्हे और मुँह नहीं दिखाऊँगी, और तुम्हारे रास्ते नहीं आऊँगी । अभी जाती हूँ, मुझे मारो नहीं ।"

गोविन्दलाल की पिस्तौल मे खट से शब्द हुआ । इसके बाद बड़ा शब्द, इसके बाद सब अँधेरा । रोहिणी के प्राणपखेरू उड़ गये, शरीर भू-लुण्ठित हो गया ।

पिस्तौल ज़मीन मे डालकर गोविन्दलाल बड़े द्रुतवेग से घर से निकल गये।

पिस्तौल की आवाज़ सुनकर रूपा वगैरह नौकर देखने दौड़े। देखा, बालक के नाखून से नोचे कमल की तरह रोहिणी का मृत शरीर फर्श पर लोट रहा है। गोविन्दलाल कही नहीं।

दसवाँ परिच्छेद

दूसरा साल

उसी रात को चौकीदार ने थाने मे रपोट की कि प्रसादपुर की कोठी मे ख़ून हुआ है। सौभाग्य से थाना वहाँ से छः कोस दूर था। दारोगा को आते हुए दूसरे दिन पहर भर दिन चढ आया। आते ही वे ख़ून की तहकीकात करने लगे। मौजूदा स्थिति और लाश की जाँच करके उन्होने वाकायदा रपोट लिख कर भेजी। बाद को रोहिणी की लाश बँधवा कर बैलगाड़ी से चौकीदार के साथ अस्पताल भेज दी। फिर नहा-धोकर भोजन किया। बाद को निश्चिन्त होकर अपराधी की खोज करने लगे। कहाँ अपराधी? गोविन्दलाल रोहिणी को गोली मार कर ही घर से निकले थे, फिर नहीं आये। एक रात और एक दिन का अवकाश पाकर कहाँ—कितनी दूर गये, यह कौन कह सकता है? किसी ने उन्हे नही देखा। किस तरफ भगे, किसी को मालूम नही। उनका नाम तक किसी को नही मालूम। गोविन्दलाल ने प्रसादपुर मे कभी अपना नाम-धाम नहीं ज़ाहिर किया। वहाँ चुन्नीलाल दत्त नाम ज़ाहिर किया था। किस ज़िले से आये थे, यह नौकर अब तक नहीं जानते थे। दारोगा कुछ दिनो तक इसे-उसे पकड़ कर बयान लिखते-लिखाते रहे। गोविन्दलाल का

कोई पता नहीं लगा सके। अन्त में उन्होने, असामी फरार है, लिख कर आखिरी रपोट पेश की।

तब यशोहर से फिचल खॉ नाम के एक सुदक्ष खुफिया इन्स्पेक्टर भेजे गये। फिचल खाँ की तहकीकात का सविस्तर वर्णन हम जरूरी नहीं समझते। मकान की तलाशी लेते उन्हे कुछ खत और कागजात मिले, जिनसे गोविन्दलाल का असली नाम और पता मालूम किया गया। कहना नहीं होगा कि वे कष्ट स्वीकार करके छद्मवेश से हरिद्राग्राम तक गये। परन्तु गोविन्दलाल हरिद्राग्राम नहीं गये। फलत: फिचल खॉ वहॉ गोविन्दलाल को न पाकर लौट आये।

इधर निशाकरदास उस कराल काल-रात्रि में विपन्ना रोहिणी को छोड़ कर प्रसादपुर के बाजार मे अपने डेरे पर आकर उपस्थित हुए। वहॉ माधवीनाथ उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। माधवीनाथ गोविन्दलाल से सुपरिचित थे, इसलिए स्वयं उनके पास नहीं गये; अब, निशाकर ने आकर, सविशेप उनसे कहा। सुनकर माधवीनाथ ने कहा, "काम अच्छा नहीं हुआ। एक ख़ून-खराबा हो सकता है।" इसका परिणाम क्या होता है, मालूम करने के लिए, दोनो प्रसादपुर के बाजार मे, छिप कर बड़ी सावधानी से रहने लगे। सुबह को सुना कि चुन्नीलाल दत्त अपनी स्त्री का ख़ून करके भग गया है। वे लोग बहुत घबराये और दु:खी हुए। घबराहट गोविन्दलाल के लिए हुई। परन्तु बाद को देखा, दारोगा कुछ कर नहीं सके। गोविन्दलाल का कोई पता नहीं। तब वे लोग एक तरह निश्चिन्त होकर फिर भी बड़े उदास मन से, अपने यहॉ के लिए रवाना हुए।

ग्यारहवाँ परिच्छेद

तीसरा साल

भ्रमर मरी नही। क्यो नहीं मरी, यह हमे नहीं मालूम। इस संसार मे विशेष दु ख यह है कि मरने के उपयुक्त समय मे कोई नहीं मरता, सब असमय मे मरते है। भ्रमर नही मरी शायद यही उसका कारण है। कुछ हो, भ्रमर उत्कट रोग से कुछ मुक्त हो गई है। भ्रमर फिर पिता के यहाँ है। माधवीनाथ गोविन्दलाल का जो सवाद ले आये थे, उनकी पत्नी ने बडे छिपाव से अपनी बड़ी लड़की—भ्रमर की बहन—से कहा था। उनकी बड़ी लड़की ने बड़े छिपाव से वह संवाद भ्रमर से कहा था, इस समय भ्रमर की बड़ी बहन यामिनी कह रही थी, "अब वे हरिद्राग्राम के मकान मे क्यो न आकर रहे ? इस तरह शायद कोई विपत्ति नही रह जायगी।"

भ्रमर—विपत्ति क्यो नही रह जायगी ?

यामिनी—वे प्रसादपुर मे नाम बदलकर रहते थे। वहीं गोविन्दलाल बाबू है, यह तो कोई जानता नहीं।

भ्रमर—तुमने सुना नहीं क्या, हरिद्राग्राम मे भी पुलिस के आदमी उनकी खोज मे आये थे ? फिर उन्हे मालूम नही कैसे ?

यामिनी—मालूम है तो हो। फिर भी यहाँ आकर अपने विषय पर अपनी जायदाद सँभालने पर रुपया हाथ मे रहेगा। पिता जी कहते है, पुलिस रुपये के अधीन है।

भ्रमर रोने लगी। कहा, वह परामर्श उन्हे कौन दे ? कहाँ उनसे मुलाकात होगी कि यह सलाह उन्हे दूँ ? पिता जी ने एक बार उनका पता लगाया था—क्या फिर एक बार पता लगा सकते है ?"

यामिनी—पुलिस के आदमी कितना पता रखते है, वही जब दिन-रात पता लगाते हुए टोह नही पा रहे, तब पिता जी किस तरह पता लगायेगे ? लेकिन हमे जान पड़ता है, गोविन्दलाल बाबू

आप हरिद्राग्राम मे आकर वैठेगे। प्रसादपुर की उस घटना के बाद ही अगर वे हरिद्राग्राम मे आ जाते, तो प्रसादपुर के वही बाबू है, इस बात पर लोगों को विश्वास हो जाता इसी लिए जान पड़ता है, इतने दिन वे नहीं आये। अब आयेगे, ऐसा भरोसा किया जा सकता है।

भ्रमर—मुझे कोई भरोसा नहीं।

यामिनी—अगर आवे ?

भ्रमर—अगर यहाँ आने पर उनका मङ्गल हो, तो देवता से मै मन-वाणी-कर्म से प्रार्थना करती हूँ, वे आये। अगर न आने पर उनका कल्याण हो, तो मन-वाणी-कर्म से प्रार्थना करती हूँ, इस जन्म मे उनका हरिद्राग्राम आना न हो। वे जिससे निरापद रहे, ईश्वर उन्हे वही मति दे।

या०—मेरी समझ से, बहन, तुम्हारा वहीं रहना जरूरी है। नहीं मालूम, किस दिन वे रुपये के लिए आ पहुँचे ? अगर अमलो पर अविश्वास करके उनसे न मिले ? तुम्हे न देखने पर वे लौट जा सकते है।

भ्र०—मुझे यह रोग है। कब मरूँ, कब तक जीऊँ, मै वहाँ किसके सहारे रहूँगी ?

या०—कहो, तो हम कोई वहाँ चलकर रहे, फिर भी तुम्हारा वहीं रहना कर्तव्य है।

सोचकर भ्रमर ने कहा, "अच्छा, मै हरिद्राग्राम जाऊँगी। माँ से कहना, कल ही मुझे भेज दे। अभी तुममे किसी को नहीं जाना होगा। परन्तु मेरी विपत्ति के दिन तुम लोग आना।"

या०—कैसी विपत्ति भ्रमर ?

भ्रमर रोती हुई बोली, "अगर वे आये ?"

या०—वह फिर विपत्ति कौन-सी है, भ्रमर ? तुम्हारा खोया धन यदि घर लौट आये, तो इससे आनन्द की बात और क्या होगी ?

भ्र०—आनन्द, दीदी, आनन्द की बात मेरे लिए अब कौन-सी है ?

भ्रमर ने और बातचीत नहीं की। उसके मन की बात यामिनी कुछ नहीं समझी। भ्रमर का मर्मान्तक रोदन यामिनी कुछ नहीं समझी। भ्रमर को मानस नेत्रों से धूममय चित्रवत् इस काण्ड का अन्त दिखलाई पड़ा। यामिनी ने कुछ नहीं देखा। यामिनी नहीं समझी कि गोविन्दलाल हत्याकारी है, भ्रमर यह भूल नहीं रही।

बारहवाँ परिच्छेद

पाँचवाँ साल

भ्रमर फिर ससुर के यहाँ गई। यदि पति आये, इसकी नित्य प्रतीक्षा करने लगी। परन्तु पति तो नहीं आये। दिन गये, मास गये,—पति नहीं आये, कोई खबर भी नहीं आई। इस प्रकार, तीसरा साल भी पार हो गया। गोविन्दलाल नहीं आया। इसके बाद चौथा साल भी पार हो गया, गोविन्दलाल नहीं आया। इधर भ्रमर की पीड़ा भी बढ़ने लगी। दमा, खाँसी, रोग—नित्य शरीर का क्षय—यम आगे बढ़ा हुआ—जान पडता है, इस जन्म मे मुलाकात नहीं होगी।

इसके बाद पाँचवाँ साल शुरू हुआ। पाँचवे साल बडा भारी शोर-गुल मचा। हरिद्राग्राम मे संवाद आया कि गोविन्दलाल पकड़ गया है। सवाद आया कि गोविन्दलाल वैरागी के वेश से वृंदावन मे वास कर रहा था—वहाँ से पुलिस पकड़कर यशोहर ले आई है, यशोहर मे उसका विचार होगा।

लोक-मुख से भ्रमर ने यह सवाद सुना। लोगो के बात उठाने

का सूत्र यह है:—गोविन्दलाल ने भ्रमर के दीवान जी को पत्र लिखा था, "मै जेल चला—मेरी पैत्रिक सम्पत्ति से मेरी रक्षा के लिए रुपया खर्च करना यदि तुम लोगो की सम्मति से उचित हो, तो यही समय है। मै इसके योग्य नहीं हूँ। मेरी जीने की इच्छा नही, लेकिन फाँसी पर न लटकना पड़े, यह भिक्षा है। यह बात लोगो से घर मे कहलाना, मैने खत लिखा है, यह जाहिर न करना।" दीवान जी ने पत्र की बात नहीं जाहिर की—लोगो का कहना है, कहकर अन्तःपुर मे संवाद भेजा।

भ्रमर ने सुनकर ही पिता को बुला लाने के लिए आदमी भेजा। माधवीनाथ सुनते ही लड़की के पास आये। भ्रमर ने उन्हे नोट और कागज़ से पचास हज़ार रुपया देकर सजल नयनो से कहा, "पिता जी, अब जो कुछ करना हो, करो; देखना, मुझे आत्म-हत्या न करनी पड़े।"

माधवीनाथ ने भी रोते हुए कहा, "बेटी, निश्चिन्त रहो—हम आज ही यशोहर जा रहे है। कोई चिन्ता न करना। गोविन्दलाल ने खून किया है, इसका कोई प्रमाण नही। हम प्रतिज्ञा करके जा रहे है कि तुम्हारा अड़तालीस हज़ार रुपया बचा लायेगे—जामाता को गाँव ले आयेगे।"

माधवीनाथ ने यशोहर यात्रा की। सुना कि प्रमाण की अवस्था बड़ी भयङ्कर है। इन्स्पेक्टर फिचल खाँ ने तहकीकात करके गवाहो को चालान से भेजा है। उन्होने, रूपा-सोना आदि जो गवाह सही बाते जानते थे, उनमे से किसी का भी पता नहीं पाया। सोना निशाकर के पास था—रूपा किस देश को गया था, किसी को नहीं मालूम। सुबूत का यह हाल देखकर फिचल खाँ ने कुछ नकद खर्च करके तीन गवाह तैयार किये थे। गवाहो ने मैजिस्ट्रेट साहब से कहा, "हम लोगो ने अपनी आँखों देखा है कि गोविन्दलाल उर्फ चुन्नीलाल ने अपने हाथ पिस्तौल दागकर रोहिणी का खून किया

है। हम लोग उस वक्त वहाँ गाना सुनने गये थे।" मैजिस्ट्रेट साहब अहल विलायती है, सुशासन के लिए सरकार से सदा तारीफ पाया करते है—इस सुबूत पर उन्होने गोविन्दलाल को विचार के लिए सेशन-सिपुर्द किया। जब माधवीनाथ यशोहर पहुँचे, उस समय गोविन्दलाल जेल मे सड़ रहे थे। माधवीनाथ कुल वृत्तान्त मालूम कर बहुत दुखी हुए।

उन्होने गवाहो के नाम-धाम मालूम किये, उनके घर गये। कहा, "सुनो, मैजिस्ट्रेट साहब से जो कुछ कहा, वह कहा, अब जज साहब से दूसरी तरह कहना होगा। कहना होगा कि हम लोग कुछ नहीं जानते। यह लो पाँच-पाँच सौ रुपये नकद। असामी छूट जाने पर और पाँच-पाँच सौ देगे।"

गवाहो ने कहा, "खिलाफ हलफ उठाने की वजह हम जो फँसेगे।"

माधवीनाथ ने कहा, "डरो नहीं। हम रुपया खर्च करके गवाहो से साबित करेगे कि फिचल खाँ ने मारपीट कर मैजिस्ट्रेट की इजलास मे तुमसे झूठी गवाही दिलवाई है।"

गवाहो ने चौदह पुश्तो मे कभी हजार रुपया एक जगह नहीं देखा। उसी वक्त राजी हो गये।

सेशन मे विचार का दिन आ पहुँचा। गोविन्दलाल कठघरे मे थे। पहले गवाह ने आकर हलफ उठाया। सरकारी वकील ने उससे पूछा, "तुम इस गोविन्दलाल उर्फ चुन्नीलाल को पहचानते हो?"

गवाह—कहा—नहीं,—याद तो नहीं आती।

वकील—कभी देखा है?

गवाह—नहीं।

वकील—रोहिणी को पहचानते थे?

गवाह—कौन रोहिणी?

वकील—प्रसादपुर की कोठी मे जो थी।

"अस्तु आप बिना किसी विघ्नबाधा के हरिद्राग्राम में आकर अपनी सम्पत्ति पर काबिज़ हो सकते है। मकान आपका है।

"और इस पाँच साल के अरसे में मैंने बहुत रुपया जमा कर लिया है। वह भी आपका है। आकर ग्रहण कीजिए।

"उस रुपये में कुछ मै आपसे माँगती हूँ। उससे आठ हज़ार रुपया मैने लिया। तीन हजार रुपये से गङ्गा के किनारे मैं एक मकान बनवाऊँगी, पाँच हज़ार रुपये मे अपना जीवन-निर्वाह करूँगी।

"आपके आने के कुल इन्तज़ाम करके मैं नैहर जाऊँगी। जब तक मेरा मकान तैयार न हो, तब तक मै नैहर रहूँगी। आपसे इस जन्म मे मेरी मुलाकात होने की सम्भावना नहीं। इससे मै खुश हूँ,—आप भी खुश है, इसमें मुझे सन्देह नहीं।

"आपके दूसरे पत्र की प्रतीक्षा मे मै रही।"

यथासमय पत्र गोविन्दलाल को मिला। कितना भयानक पत्र · ज़रा भी कोमलता नहीं, गोविन्दलाल ने भी लिखा था, छः साल के बाद लिख रहा हूँ, परन्तु भ्रमर के पत्र में वैसी बात एक भी नहीं। वही भ्रमर!

पत्र पढ़कर, गोविन्दलाल ने उत्तर लिखा, "मै हरिद्राग्राम नहीं जाऊँगा। जिससे यहाँ मेरे दिन पार हों, ऐसी मासिक भिक्षा यहाँ भेजवा देना।"

भ्रमर ने जवाब लिखा, "महीने महीने आपको पाँच सौ रुपये भेजे जायँगे। और भी अधिक भेज सकती हूँ, परन्तु अधिक रुपया भेजने पर उसके अपव्यय होने की सम्भावना है। और मेरा एक निवेदन है, साल साल लावारिस माल और ज़मीन बढ़ती जा रही है, आप यहाँ आकर इनका भोग करें। मेरे लिए देश न छोड़िए—मेरे दिन समाप्त हो आये है।"

गोविन्दलाल कलकत्ते मे ही रहे। दोनो समझे, यही अच्छा है।

———

चौदहवाँ परिच्छेद

सचमुच, भ्रमर के दिन समाप्त हो आये थे। बहुत दिनो से भ्रमर की प्राणहर व्याधि इलाज के कारण उपशमित थी। परन्तु रोग पर दवा का असर और नही हुआ। अब भ्रमर दिन पर दिन क्षीण होने लगी। अगहन के महीने मे भ्रमर ने चारपाई ली, अब चारपाई छोड़ कर नहीं उठती। माधवीनाथ स्वयम् आकर पास रहकर निष्फल चिकित्सा कराने लगे। यामिनी हरिद्राग्राम-वाले मकान में आकर बहन की अन्तिम शुश्रूषा करने लगी।

रोग ने इलाज नहीं माना। पूस का महीना ऐसे ही बीता। माघ के महीने मे भ्रमर ने दवा का सेवन छोड़ दिया, दवा खाना अब व्यर्थ है। यामिनी से कहा, "अब और दवा का सेवन नहीं करूँगी। दीदी—सामने फागुन का महीना है—फागुन की पौर्णमासी रात मे जैसे मरूँ। देखना दीदी, जैसे फागुन की पूर्णिमा भग न जाय, अगर देखो कि पूर्णिमा की रात पार कर रही हूँ तो मुझे एक ताना देते न भूलना, रोग से हो, ताने से हो, फागुन की चाँदनी रात मे मरना होगा। दीदी, जैसे याद रहे।"

यामिनी रोई, परन्तु भ्रमर ने और दवा नहीं पी। दवा नहीं पीती—रोग की भी शान्ति नही, लेकिन भ्रमर दिन-दिन प्रफुल्ल-चित्त होने लगी।

इतने दिन के बाद भ्रमर ने फिर मजाक शुरू किया। छ: साल के बाद यह पहले पहल छेड़ की थी। गुल होने से पहले दीपक जगा।

जितना दिन पार होने लगे, अन्तिम दिन जितना पास आने लगा भ्रमर उतना स्थिर, प्रफुल्ल और हास्यमूर्ति होने लगी। अन्त मे वह भयङ्कर कालरात्रि आ पहुँची। पुर के लोगो की चञ्चलता और यामिनी का रोना देखकर भ्रमर समझी, आज शायद दिन

साल मे चुक गया। अब दिन चलने की सम्भावना नहीं। अस्तु छ: साल के वाद गोविन्दलाल ने मन मे सोचा, भ्रमर को एक पत्र लिखूँगा।

गोविन्दलाल कलम, दावात और कागज लेकर भ्रमर को खत लिखने बैठे। हम सच कहेगे, गोविन्दलाल पत्र लिखना शुरू करते रोये। रोते हुए सोचा, भ्रमर आज तक जीती है, इसका क्या पता? किसे पत्र लिखूँ। इसके वाद सोचा, एक दफा लिखकर ही देखूँ। न हो मेरा पत्र लौट आयेगा, तब समझूँगा कि भ्रमर नही।

क्या लिखूँ, यह वात गोविन्दलाल कितनी देर तक सोचते रहे, यह नहीं कहा जा सकता। इसके वाद अन्त मे सोचा, जिसे विना दोष ही जन्म भर के लिए छोड़ दिया है, उसे जो जी मे आये वही लिखने से क्या हानि है? गोविन्दलाल ने लिखा;—

"भ्रमर!

छ: साल के वाद यह पामर तुम्हे फिर पत्र लिख रहा है। जी मे आये पढ़ना, जी मे आये, फाड़कर फेक देना। मेरे भाग्य मे जो जो घटित हुआ है, शायद कुल तुम सुन चुकी हो। यदि कहूँ, यह मेरा कर्मफल है, तुम सोच सकती हो, मै तुम्हारा मन रखने के लिए यह वात कह रहा हूँ क्योंकि आज मै तुम्हारे पास भिक्षुक हूँ।

"मै इस समय नि:स्व हूँ। तीन साल भीख माँग कर दिन पार किये है। तीर्थ मे था, वहाँ भीख मिलती थी। यहाँ भीख नही मिलती, फलत: मै भूखो मर रहा हूँ।

"मेरे जाने की एक जगह थी, काशी मे मा की गोद। लेकिन मा को काशी-प्राप्ति हो गई है, शायद यह तुम्हे मालूम है। अस्तु मेरे लिए अब और जगह नही। अन्न भी नहीं।

"इसी लिए मैने सोचा है, फिर हरिद्राग्राम मे यह काला मुँह दिखाऊँगा, नहीं तो खाने को नहीं मिल रहा। जो तुम्हे विना अपराध के छोड़कर दूसरी स्त्री से फँसा, स्त्री-हत्या तक की, उसे

अब और लाज क्या है ? जो अन्नहीन है, उसे लाज भी कैसी ? मै यह काला मुँह दिखा सकता हूँ, लेकिन तुम सम्पत्ति की अधिकारिणी हो—मकान तुम्हारा है—मैंने तुमसे वैर किया है, क्या मुझे तुम जगह दोगी ?

"पेट के कारण तुम्हारा सहारा चाहता हूँ, क्या नही दोगी ?"

पत्र लिखकर तरह तरह के विचार लडाते हुए गोविन्दलाल ने पत्र डाकखाने मे छोड़ दिया। यथासमय पत्र भ्रमर के पास पहुँचा।

पत्र पाते ही भ्रमर हस्ताक्षर पहचान गई। पत्र खोलकर कॉपते हुए भ्रमर ने शयन-गृह का दरवाजा बन्द किया। फिर एकान्त मे बैठकर ऑसुओं की सहस्रो धाराये पोछते पोछते वह पत्र पढ़ा। एक बार, दो बार, सौ बार, हज़ार बार पढ़ा। उस दिन भ्रमर ने फिर द्वार नहीं खोला। जो लोग भोजन के लिए बुलाने आये थे, उनसे कहा, "मुझे बुखार है, भोजन नहीं करूँगी।" भ्रमर को सदा बुख़ार आता है, लोगो ने विश्वास कर लिया।

दूसरे दिन सारी रात जगकर भ्रमर जब पलँग से उठी, तब उसे सचमुच ही बुखार था। परन्तु चित्त स्थिर-विकार-रहित था। खत का जवाब जो कुछ लिखना था, पहले ही निश्चित हो चुका था। भ्रमर ने हजारो बार सोचकर निश्चय किया था, इस समय सोचना नही पड़ा। पाठ तक निश्चित कर रक्खा था।

"सेविका" पाठ नहीं लिखा। परन्तु पति सभी हालत मे प्रणम्य है, इसलिए लिखा,—

"प्रणामा शत सहस्र निवेदनञ्च विशेष"

इसके बाद लिखा, "आपका पत्र मिला। सम्पत्ति आपकी है। मेरी होने पर भी मैंने उसका दान किया है।—चलने के समय आपने वह दानपत्र फाड़ डाला था, आपको याद होगा। परन्तु रजिस्ट्री आफिस मे उसकी नक़ल है। मैंने दान किया है, यह सिद्ध है। वह अब भी पायेदार है।

गवाह—अपने पिता के वक्त से कभी प्रसादपुर की कोठी में नहीं गया।

वकील—रोहिणी किस तरह मरी है?

गवाह—सुना है कि आत्महत्या की है।

वकील—खून के मामले में कुछ जानते हो?

गवाह—कुछ नहीं।

वकील ने तब, जो बयान मैजिस्ट्रेट के सामने गवाह ने दिया था, उसे पढकर सुनाते हुए पूछा, "क्यो तुमने मैजिस्ट्रेट साहब के यहाँ ये बयान दिये थे?"

गवाह—जी, हाँ।

वकील—अगर कुछ जानते नहीं, तो ऐसे बयान क्यो दिये?

गवाह—मार की वजह। फिचल खाँ ने मारकर हमारी नसें ढीली कर दी थीं।

यह कहकर गवाह कुछ रोया। दो-चार रोज पहले सगे भाई से ज़मीन के मामले मे तकरार और मारपीट हुई थी, उसके दाग बदन मे थे। गवाह ने बिना हिचक के, वे दाग फिचल खाँ की मार के दाग है, कहकर जज साहब को दिखला दिये।

अप्रतिभ होकर सरकारी वकील ने दूसरा गवाह बुलाया। दूसरे ने भी वैसा ही कहा। वह पीठ पर रॉगेवाली तसवीर का गोंद लगाकर घाव बना लाया था—हज़ार रुपये के लिए सब कुछ किया जा सकता है—घाव जज साहब को दिखाया।

तीसरा गवाह भी वैसा ही गुज़रा। सुबूत न मिलने पर जज साहब ने असामी को छोड़ दिया और फिचल खाँ पर असन्तुष्ट होकर उनके आचरण के सम्बन्ध मे तहकीकात करने के लिए मैजिस्ट्रेट साहब को उपदेश दिया।

विचार के समय गवाहो की ऐसी विपक्षता देखकर गोविन्दलाल विस्मित हुए थे। बाद को भीड़ के भीतर जब माधवीनाथ को

देखा, तब सब समझ गये। छूट कर भी उन्हे एक बार और जेल जाना पड़ा, वहाँ जेलर को परवाना मिलने पर वह छोड़ेगा। वे जब जेल को लौट रहे थे, तब माधवीनाथ ने उनसे कान मे कहा, "जेल से छूटकर हमसे मिलना। हम फलाँ जगह है।" परन्तु गोविन्दलाल जेल से छूटकर माधवीनाथ के यहाँ नहीं गये। कहाँ गये, किसी ने नहीं जाना। माधवीनाथ ने चार-पाँच दिन उनकी खोज की। कोई खबर नहीं मिली।

अन्त मे लाचार होकर अकेले हरिद्राग्राम लौट आये।

——

तेरहवाँ परिच्छेद

माधवीनाथ ने आकर भ्रमर को संवाद दिया कि गोविन्दलाल छूट गया है, लेकिन मकान नहीं आया, कहीं चला गया है, कोई पता नहीं लग सका। माधवीनाथ के हट जाने पर भ्रमर बहुत रोई, परन्तु क्यो रोई, हम नही कह सकते।

इधर गोविन्दलाल छूटकर प्रसादपुर गये, जाकर देखा, प्रसादपुर के घर मे कुछ नहीं, कोई नहीं। जाकर सुना कि अट्टालिका मे उनकी जो द्रव्य-सामग्रियाँ थी, उनका कुछ हिस्सा आदमियो ने लूट लिया था बाकी लावारिस बतलाकर नीलाम कर दिया गया था। सिर्फ मकान पड़ा है। उसके भी दरवाजे-देहलियाँ लोग ले गये है। प्रसाद-पुर के बाज़ार मे दो दिन रहकर मकान की ईट-लकड़ी आदि पानी के मोल एक आदमी को बेच दी और जो कुछ मिला, लेकर कलकत्ता चले गये।

कलकत्ते मे छिपकर बहुत साधारण अवस्था से गोविन्दलाल दिन पार करने लगे। प्रसादपुर से बहुत थोड़ा ही रुपया लाये थे, वह एक

"अस्तु आप विना किसी विघ्नबाधा के हरिद्राग्राम में आकर अपनी सम्पत्ति पर काविज़ हो सकते है। मकान आपका है।

"और इस पॉच साल के अरसे में मैने वहुत रुपया जमा कर लिया है। वह भी आपका है। आकर ग्रहण कीजिए।

"उस रुपये मे कुछ मै आपसे मॉगती हूॅ। उससे आठ हज़ार रुपया मैने लिया। तीन हजार रुपये से गङ्गा के किनारे मै एक मकान बनवाऊँगी, पॉच हज़ार रुपये मे अपना जीवन-निर्वाह करूॅगी।

"आपके आने के कुल इन्तज़ाम करके मै नैहर जाऊँगी। जव तक मेरा मकान तैयार न हो, तव तक मै नैहर रहूँगी। आपसे इस जन्म मे मेरी मुलाकात होने की सम्भावना नहीं। इससे मै ख़ुश हूँ,—आप भी ख़ुश है, इसमे मुझे सन्देह नहीं।

"आपके दूसरे पत्र की प्रतीक्षा मे मै रही।"

यथासमय पत्र गोविन्दलाल को मिला। कितना भयानक पत्र ज़रा भी कोमलता नहीं, गोविन्दलाल ने भी लिखा था, छः साल के वाद लिख रहा हूँ, परन्तु भ्रमर के पत्र मे वैसी वात एक भी नहीं। वही भ्रमर!

पत्र पढ़कर, गोविन्दलाल ने उत्तर लिखा, "मै हरिद्राग्राम नहीं जाऊँगा। जिससे यहॉ मेरे दिन पार हो, ऐसी मासिक भिक्षा यहॉ भेजवा देना।"

भ्रमर ने जवाब लिखा, "महीने महीने आपको पॉच सौ रुपये भेजे जायँगे। और भी अधिक भेज सकती हूॅ, परन्तु अधिक रुपया भेजने पर उसके अपव्यय होने की सम्भावना है। और मेरा एक निवेदन है, साल साल लावारिस माल और ज़मीन बढ़ती जा रही है, आप यहॉ आकर इनका भोग करें। मेरे लिए देश न छोड़िए—मेरे दिन समाप्त हो आये है।"

गोविन्दलाल कलकत्ते मे ही रहे। दोनो समझे, यही अच्छा है।

——

चौदहवाँ परिच्छेद

सचमुच, भ्रमर के दिन समाप्त हो आये थे। बहुत दिनो से भ्रमर की प्राणहर व्याधि इलाज के कारण उपशमित थी। परन्तु रोग पर दवा का असर और नही हुआ। अब भ्रमर दिन पर दिन क्षीण होने लगी। अगहन के महीने मे भ्रमर ने चारपाई ली, अब चारपाई छोड़ कर नहीं उठती। माधवीनाथ स्वयम् आकर पास रहकर निष्फल चिकित्सा कराने लगे। यामिनी हरिद्राग्राम-वाले मकान में आकर बहन की अन्तिम शुश्रूषा करने लगी।

रोग ने इलाज नहीं माना। पूस का महीना ऐसे ही बीता। माघ के महीने मे भ्रमर ने दवा का सेवन छोड़ दिया, दवा खाना अब व्यर्थ है। यामिनी से कहा, "अब और दवा का सेवन नहीं करूँगी। दीदी—सामने फागुन का महीना है—फागुन की पौर्णमासी रात मे जैसे मरूँ। देखना दीदी, जैसे फागुन की पूर्णिमा भग न जाय, अगर देखो कि पूर्णिमा की रात पार कर रही हूँ तो मुझे एक ताना देते न भूलना, रोग से हो, ताने से हो, फागुन की चाँदनी रात मे मरना होगा। दीदी, जैसे याद रहे।"

यामिनी रोई, परन्तु भ्रमर ने और दवा नहीं पी। दवा नहीं पीती—रोग की भी शान्ति नही, लेकिन भ्रमर दिन-दिन प्रफुल्ल-चित्त होने लगी।

इतने दिन के बाद भ्रमर ने फिर मजाक शुरू किया। छ. साल के बाद यह पहले पहल छेड़ की थी। गुल होने से पहले दीपक जगा।

जितना दिन पार होने लगे, अन्तिम दिन जितना पास आने लगा भ्रमर उतना स्थिर, प्रफुल्ल और हास्यमूर्ति होने लगी। अन्त मे वह भयङ्कर कालरात्रि आ पहुँची। पुर के लोगो की चञ्चलता और यामिनी का रोना देखकर भ्रमर समझी, आज शायद दिन

समाप्त हुआ। देह मे पीड़ा भी वैसी ही मालूम देने लगी। भ्रमर ने यामिनी से कहा, "आज अन्तिम दिन है।"

यामिनी रोई। भ्रमर ने कहा, "दीदी, आज अन्तिम दिन है—मेरी कुछ भिक्षा है—बात रखना।"

यामिनी रोने लगी। बातचीत नहीं की।

भ्रमर ने कहा, "मेरी एक भीख है, आज रोओ नहीं—मेरे मर जाने पर रोना—मै रोकने नहीं आऊँगी—परन्तु आज तुम लोगो से जो कुछ बाते कर सकूँ, बिना बाधा के कहकर मरूँगी, साध हो रही है।"

यामिनी आँसू पोंछकर बैठी, परन्तु गला भर जाने के कारण और बातचीत नहीं कर सकी।

भ्रमर कहने लगी,—"एक भीख और है—तुम्हारे सिवा और कोई यहाँ न आये। समय पर सबसे मुलाकात करूँगी, लेकिन इस समय और कोई न आये। तुमसे और बातचीत नहीं कर पाऊँगी।"

यामिनी और कब तक आँसू रोकेगी ?

क्रमशः रात होने लगी। भ्रमर ने पूछा, "रात क्या चाँदनी है, दीदी ?"

यामिनी ने झरोखा खोलकर कहा, "बड़ी सुन्दर चाँदनी निकली है।"

भ्र०—तो कुल झरोखे खोल दो—मै चाँदनी देखती हुई मरूँ। देखो तो, उस खिड़की के नीचे जो फुलवाड़ी है, उसमे फूल खिले है या नहीं ?

उसी खिड़की के पास खड़ी होकर भ्रमर सुबह को गोविन्दलाल से बातचीत करती थी। सात साल से भ्रमर उस खिड़की की तरफ नहीं गई—वह खिड़की नहीं खोली।

यामिनी ने दु:ख से वह खिड़की खोलकर कहा, "कहाँ, यहाँ

तो फुलवाडी नहीं, यहाँ तो सिर्फ घास उगी है, और दो-एक अधमरे पेड है, उनमे फूल-पत्ते कुछ नही।"

भ्रमर ने कहा, 'सात साल हुए, वहाँ फुलवाडी थी। बिना मरम्मत के उजड़ गई है। मैने, सात साल हुए, देखभाल नही की।'

बहुत देर तक भ्रमर चुपचाप रही। इसके बाद कहा, "जहाँ से हो, दीदी, आज मुझे फूल मँगा देने होगे। देखती नही, आज फिर मेरी फूलशय्या* है।"

यामिनी ने वैसा ही किया। तब भ्रमर की आँखो से आँसू गिरने लगे। यामिनी ने पूछा, "रोती हो क्यो, बहन?"

भ्रमर ने कहा, "दीदी, एक बड़ा दुःख रहा। जिस दिन वे मुझे छोड़कर काशी गये, उस दिन हाथ जोडकर मैने देवता से भीख माँगी थी, एक दिन के लिए जैसे उनसे मेरी मुलाकात हो, "स्पर्द्धा करके कहा था, 'मै यदि सती हूँ तो फिर तुमसे मुलाकात होगी।' कहाँ, फिर तो मुलाकात नहीं हुई। आज के दिन—मरने के दिन, दीदी, एक बार यदि देख पाती। एक दिन मे, दीदी, सात साल का दुःख भूल जाती।"

यामिनी ने कहा, "देखोगी?" भ्रमर बिजली की तरह काँध उठी। पूछा, "किसकी बात कहती हो?"

यामिनी ने स्थिर होकर कहा, "गोविन्दलाल की बात, वे यहाँ है—पिता जी ने तुम्हारी बीमारी की खबर उन्हे दी थी। खबर पाकर वे तुम्हे एक बार देखने के लिए आये है, आज पहुँचे है। तुम्हारी हालत देखकर डर से अब तक तुमसे नही कह सकी—वे भी हिम्मत करके नहीं आ सके।"

भ्रमर ने रोकर कहा, "एक बार देख लूँ, दीदी इस जीवन मे एक बार देख लूँ। इस समय एक बार दिखा दो।"

---

* विवाहवाली रात, विवाह हो जाने पर।

यामिनी उठ गई। कुछ देर बाद धीरे-धीरे पैर रखते हुए गोविन्दलाल सात साल के बाद अपने शय्या-गृह मे आये।

दोनो आदमी रो रहे थे। एक भी बोल नहीं सका। भ्रमर ने पति को पास आकर पलँग पर बैठने का इशारा किया। गोविन्दलाल आँसू बहाते हुए पलँग पर बैठे। भ्रमर ने उनसे और पास आने के लिए कहा, गोविन्दलाल और पास गये। तब, हाथ की पहुँच के अन्दर पति के पैर पाकर भ्रमर ने दोनो पैर छूकर रेणु माथे पर रख ली। कहा, "आज मेरे कुल अपराध क्षमा करके आशीर्वाद करो, दूसरे जन्म मे जैसे सुखी होऊँ।"

गोविन्दलाल कोई बात नहीं कर सके। भ्रमर का हाथ अपने हाथ मे ले लिया। उसी तरह हाथ मे हाथ रहा। बहुत देर तक रहा। भ्रमर ने चुपचाप प्राण छोड़ दिये।

पन्द्रहवाँ परिच्छेद

भ्रमर का स्वर्गवास हो गया। यथारीति उसकी क्रिया हुई। क्रिया करके गोविन्दलाल घर आये और घर मे बैठे रहे। जब से लौटे, उन्होंने किसी से बातचीत नहीं की।

फिर रात बीती। भ्रमर की मृत्यु के दूसरे दिन जैसे सूर्य रोज निकलता है वैसे ही निकला। पेड़ के पत्ते धूप-छाँह से चमकने लगे। सरोवर का काला जल छोटी छोटी तरङ्गे उठाता हुआ भुलसने लगा, आकाश के काले बादल सफेद हुए—भ्रमर जैसे मरी नहीं। गोविन्दलाल बाहर निकले।

गोविन्दलाल ने दो स्त्रियो को प्यार किया था—भ्रमर को और
हिणी मरी—भ्रमर मरी। रोहिणी के रूप की ओर

आकृष्ट हुए थे—यौवन की अतृप्त रूप-तृष्णा शान्त नहीं कर सके। भ्रमर को छोड़ कर रोहिणी को पकड़ा था। रोहिणी को ग्रहण करके ही समझ गये थे कि यह रोहिणी है, भ्रमर नहीं—यह रूप की प्यास है, यह स्नेह नहीं—यह भोग है, यह सुख नहीं—यह मन्दार-घर्षण-पीड़ित वासुकि-श्वास-निर्गत हलाहल है, यह धन्वन्तरि के भाण्ड से निकला अमृत नहीं। वे समझे कि हृदय के समुद्र को लगातार मथते हुए जो हलाहल उन्होंने निकाला है, वह दूर नहीं किया जा सकता, अवश्य पीना होगा। नीलकण्ठ की तरह गोविन्दलाल ने वह विष पान किया। नीलकण्ठ के कण्ठस्थ विष की तरह वह विष उनके गले मे रक्खा रहा। वह विष हज्म होनेवाला नहीं—वह विष उद्गीर्ण होनेवाला नहीं, किन्तु तब वह पहले की चखी हुई भ्रमर के विशुद्ध प्रणय की सुधा नैसर्गिक गन्ध से युक्त, चित्त को पुष्ट करनेवाली, सब रोगो की औषधि जैसी, दिन-रात स्मृति मे जगने लगी। जब प्रसाद-पुर मे गोविन्दलाल रोहिणी के सङ्गीत के स्रोत मे बह रहे थे, तब भी भ्रमर उनके चित मे प्रबल प्रतापवाली अधीश्वरी थी—भ्रमर अन्तर मे थी, रोहिणी बाहर। तब भ्रमर न मिलनेवाली, रोहिणी न छोडी जा सकनेवाली थी, फिर भी भ्रमर अन्तर मे थी, रोहिणी बाहर। इसी लिए रोहिणी इतना जल्द मर गई। यदि कोई यह बात न समझे, तो व्यर्थ ही यह आख्यायिका मैने लिखी।

यदि उस समय गोविन्दलाल, रोहिणी की यथोचित व्यवस्था करके स्नेहमयी भ्रमर के पास आकर हाथ जोड़कर खड़ा होता, कहता, "मुझे क्षमा करो, फिर मुझे हृदय के एक कोने मे जगह दो", अगर कहता, "मुझमे ऐसा गुण नहीं है, जिससे तुम मुझे क्षमा कर सको," तो शायद भ्रमर उसे क्षमा कर देती, क्योकि नारी क्षमा-मयी है, दयामयी और स्नेहमयी है,—नारी ईश्वर की कीर्ति का चरम विकास है, देवता की छाया है, पुरुष देवता की केवल सृष्टि है। स्त्री प्रकाश है, पुरुष छाया। प्रकाश क्या छाया को छोड़ सकता था ?

गोविन्दलाल वैसा नहीं कर सका। कुछ अहङ्कार था, पुरुष अहङ्कार से भरा है; कुछ लाज थी, पाप करनेवाले का लाज ही दण्ड है, कुछ भय था, पाप सहज रूप से पुण्य का सामना नहीं कर सकता। भ्रमर को मुँह दिखाने का रास्ता अब नहीं रह गया। गोविन्दलाल और आगे नहीं बढ़ सका। इसके बाद गोविन्दलाल हत्यारा हुआ। तब गोविन्दलाल के आशा और भरोसा खत्म हो गये। अँधेरा प्रकाश के सामने नहीं आ सका।

लेकिन फिर भी वह फिर जली हुई, न रोकी जा सकनेवाली, जला देनेवाली, भ्रमर को देखने की लालसा साल-साल, महीने-महीने, दिन-दिन, दण्ड-दण्ड, पल-पल, गोविन्दलाल को दग्ध करने लगी। किसने ऐसा पाया था? किसने ऐसा खोया? भ्रमर ने भी दुःख पाया था, गोविन्दलाल ने भी दुःख पाया था। परन्तु गोविन्दलाल की तुलना मे भ्रमर सुखी है। गोविन्दलाल का दुःख मनुष्य-देह मे असह्य है। भ्रमर का सहाय था काल, गोविन्दलाल का वह भी नहीं।

फिर रात बीती—फिर सूर्य के प्रकाश से पृथ्वी हँसी। गोविन्दलाल घर से निकले। रोहिणी के गोविन्दलाल ने अपने हाथ से प्राण लिये थे—भ्रमर के भी प्राय अपने हाथो प्राण लिये, यही सोचते सोचते बाहर निकले।

हमे नहीं मालूम कि वह रात गोविन्दलाल ने किस तरह पार की। जान पड़ता है, रात बडी भयानक बीती थी। दरवाजा खोलते ही माधवीनाथ से मुलाकात हुई। माधवीनाथ उन्हे देखकर मुँह की ओर देखते रहे—मुख पर मनुष्य की शक्ति से परे रहनेवाली रोग की छाया है।

माधवीनाथ उनसे बोले नहीं। मन मे प्रतिज्ञा की थी कि इस जन्म मे गोविन्दलाल से बातचीत नहीं करेगे। बिना कुछ बोले माधवीनाथ चले गये।

गोविन्दलाल घर से निकल कर भ्रमर के शयन-गृह के नीचे-वाले बगीचे मे गये। यामिनी ने ठीक कहा था, वहाँ अब फुलवाड़ी नहीं रही। घास-फूस का जङ्गल हो गया है। दो-एक न मरनेवाले पेड़ अधमरी हालत मे है—परन्तु उनमे अब फूल नहीं खिलते। गोविन्दलाल बहुत देर तक उस घास के बन मे घूमते रहे, काफी दिन चढ आया, धूप बहुत तेज़ हो गई—गोविन्दलाल टहलते टहलते थककर अन्त मे उससे बाहर निकले।

वहाँ से, गोविन्दलाल किसी से बातचीत न करके, किसी के मुँह की ओर न देखकर, वारुणी तालाब के किनारे गये। दिन डेढ़ पहर चढ आया। तीव्र धूप से वारुणी की गहरी काली निर्मल जल-राशि झुलस रही थी। स्त्री-पुरुष बहुसंख्यक आदमी घाट पर नहा रहे थे—बच्चे काले पानी को स्फटिक की तरह चूर-चूर करते हुए तैर रहे थे। गोविन्दलाल को उतने आदमियो का समागम नही अच्छा लगा। घाट से, वारुणी के किनारे, जहाँ उनका वह बहु-पुष्प-रञ्जित नन्दन-तुल्य पुष्पोद्यान था, उस ओर गये। पहले ही देखा, रेलिङ्ग टूट गई है—लोहे के विचित्र द्वार की जगह बाँस की खपाचियो का बेड़ा। भ्रमर ने गोविन्दलाल के लिए कुल सम्पत्ति यत्नपूर्वक बचाई थी, इस उद्यान के लिए कुछ भी प्रयत्न नहीं किया गया था। एक दिन यामिनी ने इस बगीचे की बात चलाई थी। भ्रमर ने कहा था, मै यम के घर चली—मेरा यह नन्दन-वन भी उजड़ जाय। दीदी, पृथ्वी मे मेरा जो स्वर्ग था, वह और किसे दे जाऊँ ?"

गोविन्दलाल ने देखा, फाटक नहीं—रेलिङ्ग गिर गई है। पैठकर देखा, फूल के पेड़ नही—सिर्फ घास उगी है, जङ्गली अरई के पेड, मदार और कुकुरमुत्ते से बगीचा भरा है। लता-मण्डप कुल टूटकर गिर गये है—पत्थर की मूर्तियो के दो-दो, तीन-तीन खण्ड हो गये है और वे जमीन पर लोट रहे है, उन पर लताये चढी हुई है, कोई मूर्ति टूटी हालत मे खड़ी है। प्रमोदभवन की छत टूट

गई है—झिलमिल दरीचा कोई तोड़कर ले गया है । मारवर पत्थर कोई फर्श से निकाल कर ले गया है । उस बगीचे मे अब फूल नहीं खिलते—फल नहीं लगते—शायद अच्छी हवा भी अब नहीं चलती ।

पत्थर की एक टूटी मूर्ति के पैरो पर गोविन्दलाल बैठे । क्रमश. दुपहर हो आई, गोविन्दलाल वहीं बैठे रहे । प्रचण्ड सूर्य के तेज से उनका मस्तक उत्तप्त हो उठा; परन्तु गोविन्दलाल ने कुछ भी अनुभव नहीं किया । उनमें बड़ी बेचैनो है, रात से केवल भ्रमर और रोहिणी को सोच रहे है । एक बार भ्रमर, फिर रोहिणी; फिर भ्रमर, फिर रोहिणी । सोचते सोचते आँखो से भ्रमर को देखने लगे, सामने रोहिणी को देखने लगे—ससार भ्रमर-रोहिणीमय हो उठा । उस उद्यान मे बैठे हुए हर पेड़ को भ्रमर देखने लगे, हर पेड़ की छाँह में रोहिणी बैठी है, देखने लगे । अभी भ्रमर खड़ी थी, अब नहीं; अभी रोहिणी आई, फिर कहाँ गई ? हर शब्द मे भ्रमर या रोहिणी का कण्ठ सुनने लगे । घाट मे नहाने-वाले बाते कर रहे है, इससे कभी मालूम हुआ, भ्रमर बाते कर रही है, कभी मालूम देने लगा, रोहिणी बाते कर रही है—कभी जान पड़ने लगा, वे दोनो बातचीत कर रही है । सूखा पत्ता हिल रहा है—जान पड़ा, भ्रमर आ रही है । वन मे वन्य कीट-पतङ्ग विचर रहे है—मालूम दिया, रोहिणी भग रही है । हवा से शाखा हिल रही है—मालूम हुआ, भ्रमर साँस छोड़ रही है । पपीहे की पुकार से मालूम दिया, रोहिणी गा रही है । संसार भ्रमर-रोहिणी-मय हो गया ।

दिन के दो पहर—ढाई पहर बीत चुके, गोविन्दलाल वहीं है—उसी टूटी मूर्ति के पैरो पर—उसी भ्रमर-रोहिणीमय संसार मे । दिन तीन पहर, साढ़े तीन पहर बीता—बिना नहाये, बिना खाये गोविन्दलाल वहीं है, उसी भ्रमर-रोहिणीमय अनल-कुण्ड मे ।

सन्ध्या हो गई, फिर भी गोविन्दलाल उठे नहीं—उन्हे चेतना नहीं। उनके घरवालो ने तमाम दिन उन्हे न देखकर सोचा था, वे कलकत्ता चले गये है, इसलिए बहुत तलाश नहीं की। वहीं सन्ध्या हो गई। वन मे अँधेरा छा गया। आकाश मे तारे निकल आये। पृथ्वी नीरव हो गई। गोविन्दलाल वहीं है।

अकस्मात् उस अन्धकार मे, स्तब्ध एकान्त मे गोविन्दलाल का उन्मादग्रस्त चित्त विषम रूप से विकृत हो गया। वे साफ साफ रोहिणी का गला सुनने लगे। रोहिणी ऊँचे स्वर से जैसे कह रही है—

"यहीं"

गोविन्दलाल को तब याद नहीं रही कि रोहिणी मर गई है। उन्होने पूछा, "यहीं—क्या ?"

जैसे सुना, रोहिणी कह रही है—

"इसी समय।"

गोविन्दलाल कल मे जैसे बोले, "यहीं, इसी समय, क्या रोहिणी ?"

मानसिक व्याधि से पीड़ित गोविन्दलाल ने सुना, फिर रोहिणी ने जवाब दिया—

"यहीं, इसी समय, उस पानी मे, मै डूबी थी।"

गोविन्दलाल ने अपने मानस से निकली यह वाणी सुनकर पूछा—"मै डूबूँ ?"

फिर व्याधिजनित उत्तर सुना, "हाँ, आओ। भ्रमर स्वर्ग मे बैठी हुई कह भेज रही है कि अपने पुण्यबल से हमारा उद्धार करेगी।"

"प्रायश्चित्त करो! मरो!"

गोविन्दलाल ने आँखे मूँद लीं। उनका शरीर अवसन्न हो गया, काँपने लगा। वे मूर्च्छित होकर सोपान की शिला पर गिर गये।

मोह की अवस्था मे मानस-नेत्रो से देखा, एकाएक रोहिणी-मूर्ति अँधेरे मे लीन हो गई। तब क्रमशः दिगन्त को प्रभासित करके ज्योतिर्मयी भ्रमर-मूर्ति सामने उदित हुई।

भ्रमर-मूर्ति ने कहा, "मरोगे क्यो, मरो नहीं। मुझे खो चुके हो, इसलिए मरोगे? मुझसे भी प्रिय कोई है। बचने पर उन्हे पाओगे।"

गोविन्दलाल उस रात को मूर्च्छित अवस्था मे वहीं पडे रहे। प्रभात के समय पता पाकर उनके घर के लोग उठाकर उन्हे घर ले गये। उनकी बुरी हालत देखकर माधवीनाथ को दया लगी, सबने मिलकर उनकी चिकित्सा कराई। दो-तीन महीने मे गोविन्दलाल प्रकृतिस्थ हुए। सब लोग प्रत्याशा करने लगे कि वे अब घर मे रहेगे। परन्तु गोविन्दलाल ने वैसा नहीं किया। एक रात वे किसी से कुछ न कह कर कहीं चले गये। और किसी को उनका कोई संवाद नहीं मिला।

सात साल के बाद उनका श्राद्ध हुआ।

परिशिष्ट

गोविन्दलाल की सम्पत्ति उनके भानजे शचीकान्त को मिली। शचीकान्त अब बालिग़ है।

शचीकान्त रोज उस श्रीहीन वन मे—जहाँ पहले गोविन्दलाल का प्रमोदोद्यान था—अब घना जङ्गल है—वहाँ टहलने जाता था।

वह दुःखमयी कथा उसने सविस्तर सुनी थी। रोज़ वहाँ टहलने जाता था और वहाँ बैठकर वह बात सोचता था। सोचते सोचते फिर वहाँ उद्यान बनाना शुरू किया। फिर विचित्र रेलिङ्ग तैयार कराई—तालाब मे उतरने के लिए मनोहर काले पत्थर की सीढ़ियाँ बनवाई। फिर क्यारियो में सुन्दर वृक्षो की श्रेणियाँ बैठाई। परन्तु रङ्गीन फूलो के पौधे नहीं लगवाये। देशी पेड़ों मे बकुल, कामिनी, विदेशी पेड़ों मे साइप्रेस और यूलो। प्रमोद-भवन की जगह एक मन्दिर बनवाया। मन्दिर में किसी देव-देवी की स्थापना नहीं की। बहुत अर्थ-व्यय करके भ्रमर की एक प्रतिमूर्ति सोने की बनवाकर उस मन्दिर मे स्थापित की। स्वर्णप्रतिमा के पैरो मे ये अक्षर खुदवाये—

"जो सुख में, दुःख मे, दोष मे, गुण मे भ्रमर के बराबर होगी, उसे मैं यह सोने की प्रतिमा दान करूँगा।"

भ्रमर की मृत्यु के बारह साल बाद उस मन्दिर के द्वार पर एक संन्यासी आकर उपस्थित हुआ। शचीकान्त वहीं थे। संन्यासी ने उनसे कहा, "इस मन्दिर मे क्या है, देखूँगा।"

शचीकान्त ने द्वार खोलकर सुवर्णमयी भ्रमर-मूर्ति दिखाई। संन्यासी ने कहा, "यह भ्रमर मेरी थी। मै गोविन्दलाल राय हूँ।"

शचीकान्त विस्मित और स्तम्भित हुए। उनकी ज़बान रुक गई। परन्तु बाद को विस्मय दूर हुआ, उन्होंने गोविन्दलाल की पदधूलि ग्रहण की। फिर उन्हें घर मे लेने के लिए प्रयत्न किया। गोविन्दलाल ने स्वीकार नहीं किया। कहा, "आज मेरा बारह साल का अज्ञात-वास पूरा हुआ। अज्ञातवास पूरा करके तुम लोगो को आशीर्वाद करने के लिए यहाँ आया हूँ। इस समय तुम्हे आशीर्वाद दे चुका, अब लौट जाऊँगा।"

शचीकान्त ने हाथ जोड़कर कहा, "सम्पत्ति मेरी है, आप भोग कीजिए।"

गोविन्दलाल ने कहा, "विषय-सम्पत्ति से भी जो धन बढ़कर है, जो कुबेर के लिए भी अप्राप्य है, वह मुझे मिला है। इस भ्रमर की अपेक्षा भी जो मधुर है, भ्रमर की अपेक्षा भी जो पवित्र है, वह मुझे मिला है। मुझे शान्ति मिली है। सम्पत्ति की मुझे आवश्यकता नही; तुम्हीं उसका भोग करते रहो।"

शचीकान्त ने विनीतभाव से पूछा, "क्या संन्यास से शान्ति मिलती है?"

गोविन्दलाल ने जवाब दिया, "कदापि नहीं। केवल अज्ञात-वास के लिए मेरा संन्यासी का परिच्छद है। भगवत-पाद-पद्मो मे मन:स्थापन के सिवा शान्ति पाने का दूसरा उपाय नहीं। वही अब मेरी सम्पत्ति—मेरी भ्रमर—भ्रमर से भी अधिक भ्रमर है।

यह कहकर गोविन्दलाल चले गये। फिर किसी ने उन्हे हरिद्रा-ग्राम मे नहीं देखा।

(समाप्त)